बिजनेस स्टडीज - 12

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. प्रबन्ध के सिद्धान्तों की प्रकृति का वर्णन कीजिए।

उत्तर--- प्रबंध के सिद्धांतों की प्रकृति

प्रकृति का अर्थ होता है– किसी भी चीज के गुण व विशेषताएँ। सिद्धान्त केवल सामान्य औपचारिक कथन होते हैं, जो कुछ परिस्थितियों में ही लाग होते हैं तथा इनका विकास प्रबंधकों के अवलोकन, व्यक्तिगत अनुभव एवं अवलोकन से होता है। अतः प्रबंध को विज्ञान व कला के रूप में विकसित करने में उनका योगदान इस बात पर निर्भर होता है कि उन्हे कैसे प्राप्त किया जाता है तथा वह प्रबधकीय व्यवहार को किस प्रभवि ढंग से समझा सकते हैं व उसका पर्वानमान लगा सकते हैं। इन सिद्धांतों का विकास करना विज्ञान ता वही इनके उपयोग को कला माना जा सकता है। प्रायः यह सिद्धांत ही प्रबंध को व्यावहारिक पक्ष अध्ययन तथा शैक्षणिक योग्यता को विश्वसनीयता प्रदान करते हैं। प्रबंध के उच्चतम पदों पर पहुँचना जना क कारण नहीं, अपित आवश्यक विशिष्टताओं के कारण होता है। स्पष्टत: प्रबंध पेशे के रूप में विकास के साथ ही प्रबंध के सिद्धांतों के महत्त्व में भी बढ़ोतरी हुई है। कार्य के लिए सिद्धांत, मार्गदर्शन का कार्य करते हैं तथा कारण व परिणाम के मध्य संबंध को स्पष्टता प्रदत्त करते हैं। प्रबंध करते समय प्रबंध के संगठन नियोजन, नियुक्तीकरण, निर्देशन तथा नियंत्रण प्रबंध की क्रियाएँ हैं; जबकि सिद्धांत इन सभी कार्यों को करते समय प्रबंधकों की निर्णय लेने में सहायता प्रदान करते हैं। निम्नलिखित बिंदु प्रबंध के सिद्धांतों की प्रकृति का संक्षेप में वर्णन करते हैं

1. सवप्रयुक्त---- प्रबंध के सिद्धांत सभी प्रकार के संगठनों में उपयोग किए जा सकते हैं। यह संगठन व्यावसायिक, गैर-व्यावसायिक, सार्वजनिक या निजी , छोटे या बड़े, विनिर्माण व सेवा क्षेत्र से सबधित हो सकते हैं लेकिन प्रबंध के सिद्धांत किस सीमा तक प्रयुक्त हो सकते हैं यह उस संगठन की प्रकृति, परिचालन के परिमाण, व्यावसायिक कार्यों आदि बातों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए-अत्यधिक उत्पादन के लिए कार्यों को छोटे-छोटे भागों में विभाजित करना चाहिए तथा प्रत्येक कर्मचारी को अपने कार्य में दक्ष तथा प्रशिक्षित करना चाहिए। इस सिद्धांत का उपयोग सरकारी कार्यालयों में हो सकता है, जहाँ डाक या विलेखों को भेजने अथवा प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन प्रेषण क्लर्क, कम्प्यूटर में आँकड़ों को दर्ज करने के लिए आँकड़े प्रवेश परिचालक, चपरासी, अधिकारी आदि होते हैं। इन सिद्धांतों को सीमित दायित्व कंपनियों में भी प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए-उत्पादन, वित्त,

विपणन एवं अनुसंधान व विकास आदि। वहीं कार्य विभाजन की सीमा परिस्थिति के अनुरूप अलग हो सकती है।

2. सामान्य मार्गदर्शन----- प्रबंध के सिद्धांत कार्य के लिए पथप्रदर्शन अथवा मार्गदर्शन का भी कार्य करते हैं, लेकिन ये सभी प्रबंधकीय समस्याओं के तैयार तथा शतप्रतिशत समाधान नहीं होते। इसका कारण यह है कि वास्तविक परिस्थितियाँ बहुत जटिल व गतिशील तथा कई तत्त्वों का परिणाम होती हैं लेकिन सिद्धांतों के महत्त्व का आकलन कम करके नहीं किया जा सकता, क्योंकि छोटे-से-छोटा दिशा-निर्देश भी किसी समस्या को हल करने में सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए-यदि दो विभागों में कोई विरोध जैसी स्थिति उत्पन्न होती है, तो इसका समाधान करने के लिए प्रबंधक संगठन के व्यापक उद्देश्यों को प्राथमिकता प्रदान कर सकते हैं।

3. व्यवहार एवं शोध द्वारा निर्मित--- प्रबंधकों के अनुभव, बुद्धिचातुर्य तथा शोध के द्वारा ही प्रबंध के सिद्धांतों का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ-सभी का अनुभव है कि किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनुशासन आवश्यक है, जो प्रबंध के सिद्धांतों का अभिन्न अंग है। वहीं दूसरी ओर कारखाने में कामगारों की थकान संबंधी समस्या के हल के लिए भारी दबाव को कम करने हेतु भौतिक परिस्थितियों में सुधार के प्रभाव की जाँच हेतु परीक्षण किया जा सकता है।

4. लोच---- प्रबंध के सिद्धांत लोचरहित निर्धारण नहीं होते, जिन्हें मानना आवश्यक ही हो। ये लोचदार होते हैं तथा प्रबंधक परिस्थिति की माँग के अनुरूप इनमें आवश्यक सुधार कर सकते हैं। प्रबंधकों को ऐसा करने के लिए पर्याप्त छुट होती है। उदाहरणार्थ-सभी अधिकारों का एक ही व्यक्ति के पास होना (केंद्रीकरण) अथवा उनका विभिन्न लोगों में वितरण (विकेन्द्रीकरण) प्रत्येक उद्यम की स्थिति व परिस्थिति पर निर्भर करेगा। वैसे प्रत्येक सिद्धांत वे साधन होते हैं जो भिन्न-भिन्न उददेश्यों को पूर्ण करने के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं तथा प्रबंधक को विचार करना होता है कि किस परिस्थिति में वह किस सिद्धांत को उपयोग करे।

5. मुख्यतः व्यावहारिक---- प्रायः प्रबंध के सिद्धांतों का उददेश्य मानवीय व्यवहार को प्रभावित करना है। इस कारण प्रबंध के सिद्धांत मख्यत: व्यावहारिक प्रकति के होते हैं। इसका तात्पय यह नहा कि यह सिद्धांत वस्त-स्थिति तथा घटना से सम्बद्ध नहीं होते. अपित अंतर केवल इतना होता है कि किस कितना महत्त्व दिया जा रहा है? किसी संगठन के उददेश्यों की प्राप्ति के लिए ये सिद्धात मानवाय तथा भौतिक संसाधनों के मध्य आपसी संबंध को भली-भाँति समझने में सहायता प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए-कारखाने की योजना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाएगा कि व्यवस्था हेतु कार्य-प्रवाह की माल-प्रवाह तथा मानवीय गतिविधियों से तुलना होनी चाहिए।

6. कारण एवं परिणाम का संबंध--- प्रबंध के सिद्धांतों द्वारा ही कारण एवं परिणाम के मध्य संबंध स्थापित किया जाता है, जिससे उनका उपयोग बड़ी संख्या में समान परिस्थितियों में किया जा सके।

प्रबंध के सिद्धांत हमें यह बताते हैं कि यदि किसी एक सिद्धांत को एक परिस्थिति-विशेष में उपयोग किया गया है, तो इसके परिणाम क्या हो सकते हैं। प्रबंध के सिद्धांत कम निश्चित होते हैं, इसका कारण यह है कि इन सिद्धांतों को मानवीय व्यवहार में प्रयुक्त किया जाता है। यथार्थ जीवन में परिस्थितियाँ हमेशा एक जैसी नहीं रहती हैं इसलिए कारण व परिणाम के मध्य सही संबंध को स्थापित करना कठिन कार्य होता है किन्तु प्रबंध के सिद्धांत कुछ सीमा तक ही इन संबंधों को स्थापित करने में प्रबंधकों को सहायता प्रदान करते हैं, इस कारण ये उपयोगी होते हैं। आपात जैसी स्थिति में अपेक्षा की जाती है कि कोई एक उत्तरदायित्व तथा अन्य उसका सही अनुसरण करे परंतु यदि विभिन्न प्रकार की परिचलनात्मक विशिष्टता की स्थिति है जैसे कोई नया कारखाना स्थापित करना है तो फैसला लेने में अधिक सहयोग प्राप्त करना सही होगा।

7. अनिश्चित---- प्रबंध के सिद्धांतों का उपयोग निश्चित नहीं होता अथवा समय-विशेष में विद्यमान परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सिद्धांतों के प्रयोग में आवश्यकता के अनुसार बदलाव लाया जा सकता है। उदाहरणत: कर्मचारियों को न्यायसंगत पारिश्रमिक प्राप्त होना चाहिए, लेकिन न्यायसंगत क्या है इसको बहुत-से तत्त्वों द्वारा निर्धारित किया जाता है। इनमें शामिल हैं-कर्मचारियों का योगदान, नियोक्ता की भुगतान क्षमता और जिस व्यवसाय का आप भली-भाँति अध्ययन कर रहें हैं, उसमें प्रचलित मजदूरी दर।

प्रश्न 2. समकालीन व्यावसायिक पर्यावरण में टेलर और फेयोल के योगदान की प्रासंगिकता पर चर्चा करें। [NCERT]

उत्तर- समकालिक व्यावसायिक पर्यावरण में टेलर का योगदान

फैडरिक विंसलो टेलर अमेरिका के मैकेनिकल इंजीनियर थे जिन्होंने औद्योगिक कार्यक्षमता में सुधार करना चाहा। वर्ष 1874 में वे एक शिक्षार्थी मैकेनिक बने, जहाँ पर उन्होंने निचले स्तर की कारखाना परिस्थितियों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया तथा उत्पादन की कारखाना प्रणाली के स्वरूप में परिवर्तन को अत्यधिक प्रभावित किया।

टेलर का मानना था कि यदि कार्य का विश्लेषण वैज्ञानिक रीति से किया जाए तो इसे करने का सर्वोत्तम तरीका ढूँढ़ा जा सकता है। उन्होंने सर्वाधिक समय व गति अध्ययन पर जोर दिया अर्थात उन्होंने किर्स कार्य को उसके घटकों में बाँटकर प्रत्येक को सेकण्ड तक की समयावधि में मापा। उनका विश्वास था कि समकालीन प्रबन्ध अभी अपनी शैशवावस्था में था तथा उसका एक शास्त्र के रूप में अध्ययन करने की आवश्यकता थी। वह यह भी चाहते थे कि कर्मचारियों को प्रबन्ध में सहयोग करना चाहिए, इस कारण श्रम संगठनों की कोई आवश्यकता नहीं है। सर्वश्रेष्ठ परिणाम प्रशिक्षित एवं योग्य प्रबन्धक व सहयोगी एवं नूतन विचार वाले कार्यदल के मध्य साझेदारी से प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार दोनों पक्षों को एक-दूसरे की आवश्यकता होती है। उन्होंने कारखाना प्रबन्ध में वैज्ञानिक प्रबन्ध को लागू किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अग्रलिखित सिद्धान्त बताए---

(i) विज्ञान पद्धति. न कि अंगूठा टेक नियम.

(ii) सहयोग न कि टकराव,

(iii) सहयोग न कि व्यक्तिवाद,

(iv) प्रत्येक व्यक्ति का उसकी अधिकाधिक क्षमता एवं समृद्धि के लिए विकास।

टेलर ने अपने कैरियर के दौरान शोधकार्य करके वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीक पर निष्कर्ष निकाले। उन्होंने कार्यात्मक फोरमैनशिप की तकनीक को प्रस्तुत किया जो श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण के सिद्धान्त का निम्नतम स्तर तक विस्तार है। वह प्रमापीकरण एवं सरलीकरण के पक्षधर थे। उनके अनुसार अंगूठा टेक नियम के अन्तर्गत उत्पादन पद्धतियों के विश्लेषण के लिए वैज्ञानिक पद्धति को अपनाना चाहिए। टेलर विभेदात्मक पारिश्रमिक प्रणाली के जबरदस्त पक्षधर थे। उन्होंने कुशल एवं अकुशल श्रमिक में अन्तर करके यह बताया कि मानक अवधि और अन्य मानदण्डों जैसे कार्य-अध्ययन के आधार पर निर्धारण किए जाने चाहिए।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रबन्ध के क्रम में बहत-सी नई तकनीकी को विकसित किया गया है। युद्ध-सामग्री , को अत्यधिक तैनाती के लिए परिचालन अनुसंधान का विकास किया गया। इसी प्रकार टेलर द्वारा क्रमिक

संयोजन की खोज की गई। इस अवधारणा का अब बहुत अधिक प्रयोग हो रहा है। विनिर्माण वैज्ञानिक प्रबन्ध में एकदम नया विकास है। आधुनिक युग की उत्पादन एवं अन्य व्यावसायिक गतिविधियों में कम्प्यूटर एवं रोबोट्स का उपयोग हो रहा है। यह क्रियाओं का वैज्ञानिक प्रबन्ध स्वरूप है। इससे उत्पादन के स्तर में वृद्धि हुई है, परिचालन अनुसंधान की तकनीकों का विकास किया गया है तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध के कारण इनका उपयोग किया जा रहा है।

समकालिक व्यावसायिक पर्यावरण में फेयोल का योगदान

हेनरी फेयोल एक फ्रांसीसी प्रबन्ध सिद्धान्तकार थे। उनके श्रम का वैज्ञानिक संगठन से सम्बन्धित सिद्धान्तों का 20वीं सदी के प्रारम्भ में व्यापक प्रभाव था। फेयोल के प्रशासनिक सिद्धान्त प्रबन्ध की क्लासिकल विचारधारा के विकास में महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य करते हैं। जहाँ टेलर कारखाने में कार्यशाला स्तर पर सर्वोत्तम कार्य-पद्धति की रचना करने, दिन का उचित कार्य, विभेदात्मक मजदूरी प्रणाली तथा क्रियात्मक फोरमैनशिप के रूप में कार्य करने में क्रान्ति लाने में सफल रहे तो वहीं फेयोल द्वारा समझाया गया कि प्रबन्ध का क्या कार्य है एवं इसे पूर्ण करने के लिए किन सिद्धान्तों

को पालन किया जाएगा। कारखाना प्रणाली के अन्तर्गत यदि श्रमिक की कार्यक्षमता महत्त्व रखती है तो प्रबन्धक की कुशलता भी उतनी हीन अधिक महत्त्वपूर्ण है।

फेयोल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त उत्पादन संगठन के प्रतिभोगी उद्यम, जिसे अपनी उत्पादन लागत को नियन्त्रण में रखना होता है, के सन्दर्भ में प्रयुक्त करते हैं। उन्होंने प्रबन्ध के चार कार्यों को निर्धारित किया जो हैं–नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण। उनके अनुसार किसी भी औद्योगिक इकाई के कार्यों को तकनीकी, वाणिज्यिक, वित्तीय, सुरक्षा, लेखाकर्म एवं प्रबन्धन में विभाजित किया जा सकता था। फेयॉल ने यह भी सुझाव दिया कि एक प्रबन्धक में शारीरिक, नैतिक, शैक्षणिक, ज्ञान एवं अनुभव आदि गुण भी होने आवश्यक हैं। उनका मानना था कि प्रबन्ध का वह सिद्धान्त, जो संगठन के प्रचालन के सुधार में सहायक हो सकते हैं, उनकी क्षमता की कोई सीमा नहीं है। उसने अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर प्रशासन की अवधारणा को विकसित किया। उसने कार्य-विभाजन, अधिकार एवं उत्तरदायित्व, अनुशासन, आदेश की एकता, निर्देश की एकता, सामूहिक हितों के लिए व्यक्तिगत हितों का समर्पण, कर्मचारियों को प्रतिफल, केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण, सोपान श्रृंखला, व्यवस्था, समता, कर्मचारियों की उपयुक्तता, पहल-क्षमता एवं सहयोग की भावना आदि से सम्बन्धित 14 सिद्धान्त बताए ये सभी प्रबन्ध की समस्याओं पर विस्तृत रूप से लाग होते हैं तथा आधुनिक समय में उनका प्रबन्ध की सोच पर गहरा प्रभाव पड़ा है। परन्त जिस बदलते हए पर्यावरण में व्यवसाय किया जा रहा है, उसमें इन सिद्धान्तों की व्याख्या भी बदल चकी है।

प्रश्न 3. प्रबन्ध विज्ञान भी है और कला भी। स्पष्ट रूप से व्याख्या कीजिए।

उत्तर- प्रबंध एक कला के रूप में--- कला क्या है? यहाँ हम कह सकते हैं कि कला इच्छित परिणामों को प्राप्त करने के लिए वर्तमान ज्ञान का व्यक्तिगत तथा दक्षतापूर्ण उपयोग है, जिसे अध्ययन, अवलोकन व अनुभव से प्राप्त किया जा सकता है। कला का संबंध ज्ञान के व्यक्तिगत उपयोग से है. इसलिए अध्ययन किए गए मूलभूत सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने के लिए रचनात्मकता एवं मौलिकता की आवश्यकता होती है। कला के आधारभूत लक्षण निम्नलिखित हैं

1. सद्धान्तिक ज्ञान का होना---- प्राय: कला यह मानकर चलती है कि कछ सैद्धांतिक ज्ञान पहले से हैं। बहुत-से विशेषज्ञों द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों में कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जो एक विशेष प्रकार वाली कला में प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए जन संबोधन/भाषण, नृत्य, कला या संगीत पर साहित्य सर्वमान्य है।

2. व्यक्तिगत योग्यतानुसार उपयोग---- इस मूलभूत ज्ञान का उपयोग प्राय: व्यक्ति या व्यक्ति के अनुसार अलग-अलग होता है। इसलिए कला अत्यन्त व्यक्तिगत अवधारणा है। उदाहरण के लिए-दो वक्ता, दो कलाकार, दो वक्ता अथवा दो लेखकों की अपनी कला-प्रदर्शन में भिन्नता होगी।

3. व्यवहार एवं रचनात्मकता पर आधारित--- प्रायः सभी कलाएँ व्यावहारिक होती हैं। कला वर्तमान सिद्धान्तों के ज्ञान का रचनात्मक उपयोग है। आप जानते हैं कि संगीत सात सुरों पर आधारित होता है, लेकिन किसी संगीतकार की संगीत रचना विशिष्ट या भिन्न होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि इन सुरों का किस प्रकार के संगीत सृजन में उपयोग किया गया है, जोकि उसकी अपनी व्याख्या होती है।

प्रबंध एक कला है, क्योंकि यह निम्नलिखित विशेषताओं को पूर्ण करती है---

नोट-इन विशेषताओं के विवरण के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न 3 का उत्तर देखें।

प्रबंध एक विज्ञान के रूप में---- प्रबंधक एक क्रमबद्ध ज्ञान-समूह है, जो सामान्य सत्य या सामान्य सिद्धान्तों को स्पष्ट करता है। विज्ञान की मूलभूत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं----

1. क्रमबद्ध ज्ञान-समूह---- विज्ञान, ज्ञान का क्रमबद्ध समूह है, जिसके सिद्धान्त कारण व परिणाम के मध्य में संबंध आधारित हैं। उदाहरण के लिए-पेड़ से आम का टूटकर धरती पर गिरने की घटना 'गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त' को जन्म देती है।

2. परीक्षण पर आधारित सिद्धान्त---- प्राय: वैज्ञानिक सिद्धान्तों को पहले अवलोकन के द्वारा विकसित किया जाता है और फिर नियंत्रित परिस्थितियों में बार-बार परीक्षण करके उसकी भली-भाँति जाँच की जाती है।

3. व्यापक वैधता---- प्रायः वैज्ञानिक सिद्धान्त, वैधता व उपयोग हेतु सार्वभौमिक होते हैं। अत: उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर प्रबंध विज्ञान के रूप में निम्नलिखित विशेषताओं को धारण करता है–

(i) प्रबंध भी क्रमबद्ध ज्ञान-समूह है, जिसके अपने नियम व सिद्धान्त हैं जो समयानुसार विकसित हए हैं

परन्तु ये अन्य विषय; जैसे-समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित व मनोविज्ञान शास्त्र से भी प्रेरित होता है। प्रबंध का भी अन्य किसी संगठित क्रिया की तरह अपनी शब्दावली व शब्दकोश है। उदाहरण के लिए-हम फुटबॉल या क्रिकेट जैसे खेलों पर चर्चा के समय प्राय: समान शब्दावली का प्रयोग करते हैं। अत: खिलाड़ी भी एक-दसरे से वार्ता करने में इन्हीं शब्दों का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार प्रबधकों को भी

एक-दूसरे से वार्तालाप करते समय शब्दावली का उपयोग करना चाहिए, तभी वह अपने कार्य की स्थिति को सही प्रकार से समझेंगे।

(ii) विभिन्न संगठनों में बार-बार के परीक्षण व अवलोकन के आधार पर ही प्रबंध के सिद्धान्त का विकास जा हा प्रबध का सम्बन्ध मनष्य के व्यवहार से होता है. इस कारण इन परीक्षणों के परिणामों कीन ता सहा भविष्यवाणी की जा सकती है और न ही यह प्रतिध्वनित होते हैं। प्रबंध के विद्वान इन सीमाओं के होते हुए भी सामान्य सिद्धान्तों को पहचानने में सफल रहे हैं। हेनरी फेयोल के कार्यात्मक प्रबंध के सिद्धान्त तथा एफडब्ल्यू० टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांत इसके उचित उदाहरण हैं।

(iii) प्रबंध के सिद्धांत विज्ञान के सिद्धांतों के अनुरूप विशुद्ध नहीं होते और न ही उनका उपयोग सार्वभौमिक तौर पर होता है। प्राय: इनमें परिस्थितिनुसार बदलाव किया जाता है, परंतु यह प्रबंधकों को मानक तकनीक प्रदान करते हैं जिनका प्रयोग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किया जाता है। अत: प्रबंध में विज्ञान एवं कला दोनों की विशेषताएँ विद्यमान हैं। प्रबंध का उपयोग कला है, परंतु प्रबंधक अत्यधिक श्रेष्ठकर कार्य कर सकते हैं, यदि उनके द्वारा प्रबंध के सिद्धांतों का उपयोग किया जाए। इस प्रकार प्रबंध कला व विज्ञान के रूप में एक-दूसरे से भिन्न न होकर, पूरक हैं।

प्रश्न 5. प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? प्रबन्ध की कुछ परिभाषाएँ भी दीजिए तथा इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर- प्रबन्ध का अर्थ-अतिलघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 1 से अध्ययन करें।

प्रबन्ध की परिभाषाएँ

प्रबन्ध के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं---

1. किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार, "प्रबन्ध के अन्तर्गत उन समस्त कर्तव्यों व क्रियाओं का समावेश किया जाता है, जिनका सम्बन्ध किसी उपक्रम के प्रवर्तन, उसके वित्त-प्रबन्ध, प्रमुख नीतियों के निर्धारण, समस्त आवश्यक पदार्थों की व्यवस्था, संगठनात्मक कलेवर के निर्धारण तथा प्रमुख अधिकारियों के चयन से होता है।"

2. जेम्स एल० लुण्डी के अनुसार, "प्रबन्ध मुख्यत: विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दूसरों के प्रयत्नों को नियोजित, समन्वित, प्रेरित तथा नियन्त्रित करने का कार्य है।"

3. मैकफारलैण्ड के अनुसार, "प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रशासन द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने तथा नीतियों को प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जाता है।"

4. जे०एन० शुल्ज के अनुसार, "प्रबन्ध वह शक्ति है जो एक पूर्व-निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संगठन का नेतृत्व, मार्गदर्शन एवं संचालन करती है।"

प्रबन्ध की विशेषताएँ

कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद हमें कुछ तत्त्वों के बारे में पता लगता है, जिन्हें हम प्रबंध की 'आधारभूत विशेषताएँ' कह सकते हैं।

1. प्रबंध एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है---- प्राय: किसी भी संगठन के कुछ मूल-आधार उद्देश्य होते हैं, जिनके कारण ही उसका अस्तित्व होता है। ये उद्देश्य आसान व स्पष्ट होने चाहिए तथा प्रत्येक संगठन के उद्देश्य भिन्न होते हैं। उदाहरणत: एक फुटकर दुकान का उद्देश्य बिक्री में वृद्धि करना हो सकता है, परन्तु 'द स्पास्टिकस सोसायटी ऑफ इंडिया' का उद्देश्य विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को सही शिक्षा प्रदान करना है। इस प्रकार प्रबंध संगठन के विभिन्न लोगों के प्रयासों को इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक सूत्र में बाँधता है।

2. प्रबंध सर्वव्यापी है---- संगठन चाहे सामाजिक हो या आर्थिक या राजनीतिक, प्रबंध की क्रियाएँ सभी में

एकसमान हैं। एक अस्पताल अथवा एक विद्यालय के प्रबंध की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि एक पेट्रोल पंप के प्रबंध की है। प्रबंधकों का जो कार्य भारत में है; वह संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान या जर्मनी में भी होगा। वह इन्हें किस प्रकार करते हैं; यह भिन्न हो सकता है। इस प्रकार की भिन्नता भी उनकी संस्कृति, रीति-रिवाज व इतिहास की भिन्नता के कारण हो सकती है।

3. प्रबंध बहुआयामी है--- प्रबंध एक जटिल क्रिया है, जिसके तीन प्रमुख परिमाण निम्नलिखित हैं--

(i) कार्य का प्रबंध--- प्रायः सभी संगठन किसी-न-किसी प्रकार के कार्य को करने के लिए ही होते हैं। यदि किसी कारखाने में उत्पादक का विनिर्माण कार्य होता है, तो एक वस्त्र भण्डार में ग्राहक की किसी आवश्यकता को पूरा किया जाता है जबकि अस्पताल में एक मरीज का इलाज किया जाता है। प्रबंध इन सभी कार्यों को प्राप्य उद्देश्यों में बदल देता है और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के मार्ग का निर्धारण करता है। इनमें निर्णय लेना, समस्याओं का समाधान, बजट बनाना, योजनाएँ बनाना, अधिकारों का प्रत्यायोजन करना तथा दायित्व निश्चित करना सम्मिलित हैं।

(ii) लोगों का प्रबंध---- मानव संसाधन (अर्थात् लोग) किसी भी संगठन की सबसे बड़ी सम्पत्ति होते हैं। तकनीक में सुधारों के पश्चात् भी लोगों से काम करा लेना प्रबंधक का मुख्य कार्य है। प्रायः लोगों के प्रबंधन के दो पहलू हैं (अ) पहला, यह कर्मचारियों को पृथक-पृथक आवश्यकताओं व व्यवहार वाले लोगों के रूप में मानकर व्यवहार करता है।

(ब) दूसरा, यह लोगों के साथ उन्हें एक समूह मानकर व्यवहार करता है। प्रबंध लोगों की कार्यक्षमता अथवा ताकत को प्रभावशाली तथा उनकी कमजोरी को अप्रासंगिक बनाकर उनसे संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य कराता है।

(ii) परिचालन का प्रबंध---- कोई भी संगठन क्यों न हो, इसका अस्तित्व किसी-न-किसी सेवा अथवा मल उत्पाद को प्रदान करने पर निर्भर होता है। प्रायः इसके लिए एक ऐसी उत्पादन प्रक्रिया की जरूरत होती है, जो आगत माल को उपभोग हेतु आवश्यक निर्गत में बदलने के लिए आगत माल व तकनीक के प्रवाह को व्यवस्थित करती है। यह कार्य तथा लोगों के प्रबंध से जुड़ी होती है।

4. प्रबंध एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है---- प्रबंध प्रक्रिया निरंतर, एकजुट परंतु अलग-अलग कार्यों; जैसे-निर्देशन, नियुक्तिकरण, नियोजन, संगठन व नियंत्रण की एक श्रृंखला है। सभी प्रबंधक इन कार्यों का सदा साथ-साथ निष्पादन करते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि 'नामची डिजाइनर कैंडल' में स्मृति राय एक ही दिन में बहुत-से अलग-अलग कार्य करती हैं। किसी दिन तो वह भविष्य में प्रदर्शनी की योजना बनाने पर अधिक समय लगाती हैं, तो अगले दिन वह कर्मचारियों की समस्याओं का निराकरण करने में लगी होती हैं। इस प्रकार प्रबंधक के कार्यों में कार्यों की श्रृंखला समन्वित है, जो निरंतर सक्रिय रहती है।

5. प्रबंध एक सामूहिक क्रिया है----- प्राय: संगठन विभिन्न आवश्यकता वाले अलग-अलग प्रकार के लोगों का समूह होता है। संगठन में समूह का प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी अलग उद्देश्य को लेकर शामिल होता है, परन्तु वह संगठन के सदस्य के रूप में संगठन के समान उद्देश्यों की पूर्ति हेतु काम करते हैं। इसके लिए एक टीम के रूप में कार्य करना होता है तथा व्यक्तिगत प्रयासों में समान दिशा में समन्वय की जरूरत होती है। इसी के साथ प्रबंध आवश्यकताओं व अवसरों में परिवर्तन के अनुरूप सदस्यों को बढ़ने तथा उनके विकास को संभव बनाता है।

6. प्रबंध एक अमूर्त शक्ति है--- प्रबंध एक अमूर्त शक्ति है, जो दिखाई नहीं देती लेकिन संगठन के कार्यों के रूप में इसकी उपस्थिति को अनुभव किया जा सकता है। किसी संगठन में प्रबंध के प्रभाव का भार योजनानुसार लक्ष्यों की प्राप्ति, प्रसन्न एवं संतुष्ट कर्मचारी के स्थान पर व्यवस्था के रूप में होता है।

प्रश्न 6. "वर्तमान युग प्रबन्ध का युग है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा व्यवसाय में प्रबंध के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

अथवा

"प्रबंध आज की आवश्यकता है।" समझाइए।

अथवा

आधुनिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत प्रबंध की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

अथवा

वर्तमान समाज में प्रबंध की भूमिका एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर-- प्रबंध का महत्त्व

प्राचीनकाल में जब उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था, तब श्रमिक या उत्पादक स्वयं ही उसका प्रबन्धक होता था, लेकिन वर्तमान समय में उत्पादन का पैमाना इतना बढ़ गया है कि इसके लिए प्रबन्ध-विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। उत्पादन कार्य बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा तथा श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण के आधार पर होता है। प्रबन्ध, संगठन को शक्ति प्रदान करता है तथा व्यवसाय के लक्ष्यों को इनकी प्राप्ति की योजना बनाकर निर्देशित, नियंत्रित तथा समन्वित प्रयासों के द्वारा इनको प्राप्त करने में सहायक होता है। समाज का कल्याण भी कुशल एवं श्रेष्ठ प्रबंध पर निर्भर करता है। कुशल प्रबन्ध के द्वारा किसी भी व्यवसाय या उद्योग को अच्छी प्रकार से संचालित किया जा सकता है तथा उसके ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखा जा सकता है। इस प्रकार, प्रबंध को 'उद्योगरूपी शरीर का मस्तिष्क या उसकी जीवनदायिनी शक्ति' के नाम से पुकारा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। प्रबंध का महत्त्व व्यवसाय या सरकार के क्षेत्र में ही नहीं है वरन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रबंध एक महत्वपूर्ण भमिका निभाता है। प्रबंध का प्रयत्न सदैव न्यूनम मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए अधिकतम उत्पादन करना होता है। समाज का कल्याण कुशल प्रबंध पर ही निर्भर करता है।

प्रबंध के महत्त्व को कुछ प्रमुख प्रबंधशास्त्रियों ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है--

1. जे०आर०डी० टाटा के मतानुसार, "देश के आर्थिक विकास के लिए प्रशिक्षित प्रबंध नितान्त आवश्यक है।"

2. जॉर्ज आर० टेरी के अनुसार, "आधुनिक युग में कोई भी उपक्रम प्रभावी प्रबंध के बिना अधिक समय तक सफल नहीं हो सकता।"

3. कुण्ट्ज तथा ओ'डोनेल के अनुसार, "शायद प्रबंध से अधिक महत्वपूर्ण मानव क्रिया का कोई और क्षेत्र नहीं है।"

4. एपले के मतानुसार, "प्रबंध मनुष्यों का विकास है, न कि वस्तु का। निर्देशन तथा मूल्य और कर्मचारी-व्यवस्था एक ही चीज है, उन्हें कभी पृथक् नहीं करना चाहिए। कर्मचारी-व्यवस्था ही प्रबंध है।"

5. चार्ल्स ए० बियर्ड के मतानुसार, “प्रबंध मानव-विज्ञान की प्रगति का एक आवश्यक साधन तथा आधुनिक समाज का प्रमुख विज्ञान है।"

प्रबंध के बढ़ते महत्त्व के कारण

मानवीय सभ्यता के प्रारम्भ से ही प्रबंध महत्त्वपूर्ण रहा है तथा वर्तमान समय में यह निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। प्रबंध के महत्त्व में निरन्तर वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं---

1. न्यूनतम प्रयत्नों से अधिकतम लाभों की प्राप्ति के लिए--- प्रबंध कार्य-समूहों को नए विचार व नई दिशा प्रदान करके उनके कार्यों में इस प्रकार समन्वय स्थापित करता है जिससे न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणाम प्राप्त हो जाते हैं। डार्विन के अनुसार, “कोई भी विचारधारा, कोई भी वाद, कोई भी राजनैतिक सिद्धान्त प्रदत्त मानवीय एवं भौतिक साधनों के उपयोग से न्यूनतम प्रयत्नों के द्वारा अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति नहीं करा सकता।"

2. निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए--- प्रत्येक व्यवसायी के कुछ निर्धारित उद्देश्य होते हैं, जिन्हें वह प्राप्त करना चाहता है। एक व्यक्ति की तुलना में व्यक्तियों का समूह निश्चित उद्देश्यों को अच्छी तरह से प्राप्त कर सकता है।

3. बड़े पैमाने के उत्पादन के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए--- बड़े पैमाने के उत्पादन में हजारों व्यक्तियों का समूह एक ही स्थान पर एक ही साथ कार्य करता है। इस विशाल जनसमुदाय के पथ-प्रदर्शन, नेतृत्व तथा नियंत्रण के लिए व्यवसाय प्रबंध आवश्यक होता है।

4. बढती हई प्रतियोगिता का सामना करने के लिए--- व्यवसाय व उद्योग के अस्तित्व संरक्षण के लिए गलाकाट प्रतियोगिता का सामना करने के लिए कुशल प्रबंध का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है।

5. औद्योगिक समाज के एक प्रभावी समूह के रूप में---- प्रबंध; व्यवसाय एवं उद्योग से सम्बन्धित सम्बन्धित

सभी वर्गों के हित का संरक्षण करता है तथा प्रभावी समूह के रूप में सामान्य लक्ष्यों की पूर्ति करने में सफल होता है, इसीलिए आज पूँजीपति प्रबंधकों के स्थान पर प्रबंध के नेतृत्वकारी प्रभावी समूह का महत्त्व बढ़ता जा रहा है।

6. उत्पादन के साधनों के अधिकतम दोहन के लिए--- प्रबंधक का सदैव यही प्रयास रहता है कि न्यूनतम मानवीय और माल सम्बन्धी साधनों का उपयोग करके अधिक उत्पादन हो। यह तभी सम्भव है जब संस्था में कुशल प्रबंधन हो।

7. श्रम समस्याओं के निवारण के लिए--- पूँजी और श्रम के बीच संघर्ष में वृद्धि हो जाने से पूँजीगत प्रबंधकों को सुयोग्य व्यवसाय प्रबंध की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। आधुनिक प्रबंध श्रम

समस्याओं का सन्तोषजनक ढंग से समाधान करने में सक्षम होता है क्योंकि वह श्रमिकों को उत्पादन के सहयोगी के रूप में देखता है, न कि नौकर के रूप में; और उनको अनेक सुविधाएँ प्रदान करके सन्तुष्ट रखता है, जिससे औद्योगिक शांति बनी रहती है।

8. भारत के आर्थिक नियोजन को सफल बनाने के लिए--- भारतीयों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने व राष्टीय आय में वद्धि करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की गई हैं तथा धनोत्पत्ति में वृद्धि के लिए निजी व सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में उद्योग-धन्धों का विकास व विस्तार किया गया है। अन्य घटकों के साथ-साथ इन उद्योगों की सफलता पर्याप्त सीमा तक प्रबन्धकीय क्षमता पर निर्भर करती है।

9. उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में समन्वय स्थापित करने के लिए उत्पादन---- कार्य में उत्पत्ति के विभिन्न साधनों; जैसे-भूमि, श्रम, पूँजी, कच्चा माल, सामग्री आदि की आवश्यकता होती है। इन साधनों में प्रभावकारी सहकारिता स्थापित करने के लिए प्रबंध अनिवार्य होता है।

10. आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कारों का लाभ उठाने के लिए--- वर्तमान समय में नित्य नए-नए आविष्कार हो रहे हैं। स्वचालित यन्त्रों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अणु-शक्ति के आविष्कार ने तो उद्योग के क्षेत्र में क्रान्ति ही पैदा कर दी है। अत: इन आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी आविष्कारों का समुचित लाभ उठाने के लिए सुयोग्य प्रबंध-समूह जरूरी है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में किसी भी देश के औद्योगिक विकास का आधार पूँजी निर्माण को न मानकर प्रबंधकीय प्रतिभा एवं क्षमता के विकास को माना जाना चाहिए। यही कारण है कि आज व्यावसायिक जगत का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व पूँजीपति तथा साहसी वर्ग से हटकर प्रबंधक वर्ग के कन्धों पर आ गया है।

प्रश्न 7. समन्वय का अर्थबताइए। समन्वय की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए उसके महत्त्व का वर्णन कीजिए।

उत्तर- समन्वय का अर्थ--- अतिलघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 5 से अध्ययन करें।

समन्वय की प्रकृति--- समन्वय की परिभाषाओं से इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं---

1. समन्वय सामूहिक कार्यों में एकात्मकता लाता है--- समन्वय ऐसे हितों को, जो एक-दूसरे से भिन्न हैं अथवा एक-दूसरे से संबंधित नहीं हैं उद्देश्यपूर्ण कार्य गतिविधि में एकता स्थापित करता है। समन्वय समूह के कार्यों को एक केन्द्र-बिन्दु प्रदान करता है, जिसका कार्य यह सुनिश्चित करना है कि निष्पादन योजना व निर्धारित कार्य क्रमानुसार हो सकें।

2. समन्वय कार्यवाही में एकता लाता है---- समन्वय का उद्देश्य समान लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु कार्यवाही में एकता लाना भी है, विभिन्न विभागों को आपस में जोड़ने का कार्य करता है तथा यह निर्धारित करता है कि सभी क्रियाओं को संगठन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये किया जाए। अत: आपने देखा कि नामची डिजाइनर कैण्डल' के उत्पादन व विक्रय विभागों द्वारा अपने कार्यों में समन्वय किया जाता है, जिससे बाजार की माँग के आधार पर उत्पादन किया जा सके।

3. समन्वय निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है--- समन्वय एक प्रकार का कार्य न होकर निरंतरशील प्रक्रिया है, जो नियोजन से शुरू होकर नियंत्रण तक चलती है। स्मिता रॉय दीपावली के लिए वस्त्रों से सबंध में जून माह में ही योजना बनाती है और इसके पश्चात् वह पर्याप्त कार्यबल की व्यवस्था करती है इसके लिए उत्पादन योजना के अनुसार ही लगातार निगराना रखती है तथा उसे समयानुसार ही अपने विपणन विभाग को बताना होगा कि वह विक्रय प्रवर्तन व विज्ञापन के प्रचार हेतु तैयार करे ।

4. समन्वय सर्वव्यापी कार्य है– प्रायः विभिन्न विभागों की क्रियाएँ प्रकृति के अनुसार एक-दुसरे पर आश्रित होती हैं, इस कारण ही समन्वय की आवश्यकता प्रबंध के सभी स्तरों पर होती है। समन्वय विभिन्न विभागों तथा भिन्न-भिन्न स्तर के कार्यों में एकता स्थापित करता है। इसी प्रकार स्मिता को संगठन के उद्देश्य बनाकर उन्हें प्राप्त करने के लिए क्रय, उत्पादन व विक्रय विभागों के कार्यो में समन्वय करना होता है। क्रय विभाग कपड़े को खरीदने का कार्य करता है, जो उत्पादन विभाग की क्रियाओं के लिए आधार बन जाता है और अन्ततः विक्रय संभव होता है। यदि कपड़ा निम्नकोटि वाला है या उत्पादन विभाग द्वारा निर्धारित की गईं विशिष्टताओं वाला नहीं है, तो इससे आगे की बिक्री स्वत: ही कम हो जाएगी। इस प्रकार समन्वय की अनुपस्थिति में क्रियाओं में एकता तथा एकीकरण के स्थान पर अव्यवस्था व पुनरावृत्ति होगी।

5. समन्वय सभी प्रबंधकों का उत्तरदायित्व है– किसी भी संगठन में समन्वय प्रत्येक प्रबंधक का महत्त्वपूर्ण कार्य है। प्रायः उच्च स्तरीय प्रबंधक यह सुनिश्चित करते हैं कि संगठन की नीतियों क्रियान्वित हों तथा ये अपने अधीनस्थों के साथ समन्वय करते हैं, वहीं मध्य स्तर के प्रबंधक यह सनिश्चित करने के लिए उच्च स्तर व प्रथम पंक्ति के प्रबंधकों के साथ समन्वय करत है कि कार्य योजनानुसार किया जाए। इसके अतिरिक्त प्रचालन स्तर के प्रबंधक अपने कर्मचारियों के कार्यों में समन्वय करते हैं।

6. समन्वय सोचा-समझा कार्य है---- प्रायः एक प्रबंधक को विभिन्न लोगों के कार्यों का सोच-समझकर तथा ध्यानपूर्वक समन्वय करना होता है। समन्वय इस सहयोग की भावना को दिशा-निर्देश देता है कि किसी विभाग में सदस्य अपनी इच्छा से एक-दूसरे से सहयोग करते हुए कार्य करते हैं। समन्वय की अनुपस्थिति में सहयोग भी निष्फल सिद्ध होगा और बगैर सहयोग के कर्मचारियों में असंतोष की भावना जाग्रत करेगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समन्वय, प्रबंध का अलग से कार्य न होकर उसका सार है। यदि कोई भी संगठन अपने उद्देश्यों को कुशलता व प्रभावी ढंग से प्राप्त करना चाहता है, तो उसे समन्वय की आवश्यकता जरूर होगी। किसी माला में धागे के अनुरूप ही समन्वय भी प्रबंध के सभी कार्यों का अभिन्न अंग है।

समन्वय का महत्त्व

प्राय: विभिन्न प्रबंधकीय कार्यों को समन्वित करना व्यक्तियों तथा विभागों में पर्याप्त समन्वय को सनिश्चित करता है। जैसे समन्वय की समस्या उत्पन्न होने से वृहद् स्तर के संगठन में अंतर्निहित निरंतर परिवर्तन कमजोर अथवा निष्क्रिय व जटिलताएँ हैं। अत: वृहद् स्तर के संगठनों में इस प्रकार की जटिलताओं के समन्वयन हेतु विशेष प्रयासों की जरूरत होती है। संगठन के समान उददेश्यों की प्राप्ति की तकनीक 'दृष्टिकोण' तथा 'लक्ष्य' ही हैं।

1. संगठन का आकार---- वृहद् स्तर के संगठनों में बड़ी संख्या में कार्यरत लोग समन्वय की समस्या को और जटिल बना देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में विशेष है तथा अपनी एवं संगठन की आवश्यकताओं का ऐहसास करता है। प्रत्येक की अपनी पृष्ठभूमि, कार्य करने की आदतें, दूसरो से संबंध तथा परिस्थितियों से निपटने के तरीके हैं। वैसे एक अकेला व्यक्ति सदैव बद्धिमत्ता से कार्य नहीं करता है। उसके व्यवहार को न तो सदैव सही से समझा जाता है और न ही पर्ण रूप से उसका पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस कारण संगठन की कार्य-कुशलता हेत यह आवश्यक है कि व्यक्ति तथा समूह के उद्देश्यों को समन्वय के माध्यम से एकीकृत किया जाए।

2. कार्यात्मक विभेदीकरण--- संगठन के कार्यों को प्रत्येक बार विभागों प्रभागों अथवा वर्गों में बाट दिया जाता है। समन्वय की समस्या इसीलिए उत्पन्न होती है, क्योंकि अधिकार क्षेत्रों का दृढ़ीकरण हो जाता है और उनके मध्य अवरोधक अत्यधिक शक्तिशाली हो जाते हैं। बहुत-सी बार तो यह इस कारण होता है, क्योंकि कार्यों का विभाजन युक्तिसंगत नहीं होता अथवा प्रबंधक तर्कसंगत मार्ग का अनुसरण न करके अनुभव के मार्ग का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार के मामलों में संगठन के अन्तर्गत प्रभावपूर्ण तरीके से कार्य करने के लिए समन्वय आवश्यक होता है।

3. विशिष्टीकरण--- प्राय: आधुनिक संगठनों में उच्चतम स्तर का विशिष्टीकरण है। आधुनिक तकनीकियों की जटिलताओं, कार्यों तथा इन्हें करने वालों की विविधता के कारण ही विशिष्टीकरण का जन्म होता है। विशेषज्ञ अक्सर यह सोचते हैं कि वे एक-दूसरे को पेशे के आधार पर जाँचने में कुशल हैं, लेकिन अन्य लोगों के पास इस तरह के निर्णय का कोई भी पर्याप्त आधार नहीं हो सकता। यदि विशेषज्ञों को समन्वय के बगैर कार्य करने की अनमति दे दी जाए, तो परिणाम बहुत महँगे होंगे। इस कारण संगठन में कार्यरत विभिन्न विशेषज्ञों के कार्यों में समन्वय के लिए एक विशेष प्रकार के रचना-तंत्र की आवश्यकता है।

अत: हम कह सकते हैं कि समन्वय प्रबंध का सार है। यह कुछ ऐसा नहीं है जिसके लिए एक प्रबंधक निर्देश दे, अपितु यह तो वह चीज है जिसे एक प्रबंधक संगठन, नियोजन, नियुक्तीकरण तथा निर्देशन व नियंत्रण कार्यों को करते हुए प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अतः प्रत्येक कार्य समन्वय का अभ्यास ही है।

प्रश्न 8. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए---

(क) नियोजन प्रबन्धन का प्राथमिक कार्य है।

(ख) व्यूह-रचना।

(ग) बजट।

(घ) नियोजन रचनात्मकता को कम करता है।

(ङ) उद्देश्यों का निर्धारण।

उत्तर- (क) नियोजन प्रबन्धन का प्राथमिक कार्य है---- नियोजन, प्रबंधन के अन्य कार्यों हेत आधार प्रदान करता है। समस्त प्रबंधकीय कार्यों की निष्पत्ति, नियोजन के ढाँचे के अंतर्गत की जाती है। अतः नियोजन अन्य कार्यों से पूर्व आता है, नियोजन को आयोजन का प्रमुख कहा जाता है। प्रबंधन के विभिन्न कार्य आपस में संबंधित तथा समान महत्त्वपूर्ण हैं और इसके बावजूद भी नियोजन सभी के लिए आधार प्रदत्त करता है।

(ख) व्यूह-रचना----- व्यूह-रचना द्वारा एक व्यावसायिक संस्थान की रूपरेखा को प्रस्तुत किया जाता है। यह संगठन के दीर्घावधिक निर्णयों तथा निर्देशन के मध्य संबंध स्थापित करती है। अत: यह कह सकते हैं कि व्यूह-रचना एक विस्तृत योजना है, जो संगठन के उद्देश्यों को पूर्ण करती है। विस्तृत योजना के

अंतर्गत तीन आयाम होते हैं, जो निम्नलिखित हैं---

(i) दीर्घावधिक लक्ष्यों का निर्धारण, (ii) अमुक कार्य की क्रियाविधि का चयन, (iii) उद्देश्यों की पर्ति हेतु आवश्यक स्रोतों का निर्धारण।

जब कभी एक व्यूह-रचना को तैयार किया जाता है, तो व्यावसायिक पर्यावरण का ध्यान रखा जाता है। संगठन की व्यूह-रचना को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, कानूनी तथा तकनीकी पर्यावरण में परिवर्तन आदि प्रभावित करते हैं। प्रायः व्यावसायिक पर्यावरण व्यूह-रचना, व्यवसाय की पहचान बनाने में सहायक होती है। बड़ी व्यूह-रचना के निर्णयों में, क्या व्यवसाय उसी कार्यशैली पर चालू रहेगा या

वर्तमान व्यवसाय के साथ कार्य करने किसी नवीनतम विधि को अपनाएगा या उसी बाजार के प्रभावशाली स्थान को प्राप्त करने का प्रयास करेगा, शामिल होते हैं।

(ग) बजट---- बजट एक ऐसी योजना है जिसके अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के लक्ष्यों को निर्धारित किया जाता है और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समय, धन तथा अन्य साधनों के व्यय के अनुमान दिए जाते हैं। बजट बनाते समय प्रबन्धकों को लक्ष्यों और उनको प्राप्त करने की लागत के विषय में सभी आवश्यक तत्त्वों एवं आँकड़ों को इकट्ठा करना एवं तौलना पड़ता है। बजट का संचालन नियन्त्रण प्रक्रिया का अंग है। इसके फलस्वरूप प्रबन्धक वास्तविक प्रगति की बजटीय प्रगति से तुलना करके यह निश्चित कर सकते हैं कि यदि कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका तो इसके लिए कौन उत्तरदायी है। बजट बनाने से विभिन्न विभागों के लक्ष्यों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है क्यों ये लक्ष्य न केवल एक योजना के रूप में प्रकट किए जाते हैं, वरन् ये गणनात्मक शब्दों में निश्चित किए जाते हैं।

(घ) नियोजन रचनात्मकता को कम करता है---- इसके विवरण के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न 2 का उत्तर देखें।

(ङ) उद्देश्यों का निर्धारण-सबसे पहले मुख्य कदम ही उद्देश्यों का निर्धारण है तथा प्रत्येक संगठन के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं। उद्देश्यों के निर्धारण सम्पूर्ण संगठन व प्रत्येक विभाग के लिए अथवा प्रत्येक इकाई के लिए संगठन में ही किया जाना चाहिए। उद्देश्य अथवा लक्ष्य यह बताते हैं कि संगठन क्या प्राप्त करना चाहता है? पूरे संगठन का एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि वह बिक्री में 20% की वृद्धि करना चाहते हैं। इसके लिए सभी विभाग किस तरह सहयोग प्रदान करेंगे। अत: इसे 'नियोजन' कहा जाता है, जोकि तैयार करना होता है। सभी विभागों की इकाइयों तथा कर्मचारियों के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण होना आवश्यक है, क्योंकि वे सभी विभागों को निर्देशन देते हैं। संगठन की विचारधारा में सभी विभाग अथवा इकाई अपने पृथक् उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक इकाई तथा सभी स्तर के कर्मचारियों तक उद्देश्यों की जानकारी पहुँचनी चाहिए। इसके साथ प्रबंधकों को उददेश्य-निर्धारण में अपने विचार व सहयोग भी देना चाहिए। प्रबंधकों की समझ में यह बात भी आनी चाहिए कि उनके द्वारा किए जा रहे क्रियाकलाप लक्ष्य प्राप्त में किस प्रकार सहायक हो रहे हैं। यदि अंतिम परिणाम भली-भाँति स्पष्ट होता है, तो लक्ष्य-प्राप्ति करने की ओर आगे बढ़ना सरल हो जाता है।

प्रश्न 9. ऐसा क्यों है कि संगठन हमेशा अपने सभी उददेश्यों को पूरा करने में सक्षम नहीं होते? [NCERT]

अथवा

प्रबन्धक वर्ग के श्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद कभी-कभी नियोजन क्यों असफल रह जाता है?

अथवा

नियोजन की सीमाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर- यह कथन पूर्णत: सत्य है कि संगठन हमेशा अपने सभी उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम नहीं होते तथा प्रबन्धक वर्ग के श्रेष्ठ प्रयासों के बावजूद कभी-कभी नियोजन असफल रह जाता है। इन सभी असफलताओं का कारण इसकी सीमाएँ हैं जो इस प्रकार हैं---

1. नियोजन दृढ़ता उत्पन्न करता है---- एक संस्थान द्वारा एक लक्ष्य को निश्चित समय में प्राप्त करने के लिए एक सुनियोजित योजना तैयार की जाती है और यही योजना भविष्य में कार्य करने की विधियों का निर्धारण करती है। प्रबंधक इनमें परिवर्तन करने की अवस्था में नहीं होते हैं। इस प्रकार की दृढ़ताएँ नियोजनों मेंकठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। बदली हुई परिस्थितियों में प्रबंधकों को उनसे सहयोग करने हेतु कुछ छूट अवश्य दी जानी चाहिए। किसी अमुक योजना का बदली हुई परिस्थितियों में अनुसरण करना, संस्थान के अहित में होता है।

2. परिवर्तनशील वातावरण में नियोजन प्रभावी नहीं रहता---- व्यावसायिक वातावरण अस्थिर अथवा परिवर्तनशील है, अर्थात् कुछ भी स्थायी नहीं है। वातावरण में बहुत-से पहलू शामिल होते हैं; जैसे- राजनैतिक, आर्थिक, कानूनी, भौतिक तथा सामाजिक। इन परिवर्तनों के अनुसार ही संस्थान अपनी आय को स्थायी रूप से बदल लेते हैं। यदि आर्थिक नीतियों को संशोधित कर दिया जाए या कोई प्राकृतिक आपदा आ जाए या देश की राजनैतिक दशा अस्थायी हो, तो वातावरण की प्रवृत्ति का सही-सही मूल्यांकन कठिन होता है। बाजार की प्रतियोगिता वित्तीय योजना को अस्त-व्यस्त कर देती है। बिक्री के लक्ष्य की पुनरावृत्ति करनी पड़ती है और रोकड़ बजट को भी संशोधित करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि ये सभी बिक्री पर ही निर्भर होते हैं। नियोजन प्रत्येक वस्तु का भविष्य-ज्ञान नहीं रख सकता। अतः ये सभी प्रभाव नियोजन में अवरोध उत्पन्न कर देते हैं।

3. नियोजन रचनात्मकता को कम करता है---- इसके विवरण के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न 2 का उत्तर देखें।

4. नियोजन में भारी लागत आती है—- जब नियोजन किया जाता है, तो इसमें बहुत बड़ी लागत आती है. जो धन के रूप में भी हो सकती है और समय के रूप में भी। उदाहरण के लिए-परिशुद्धता की जाँच में अत्यधिक समय लगना स्वाभाविक ही होता है। वृहत् स्तर की योजनाओं की वैज्ञानिक गणनाओं के लिए तथ्यों व अंकों को जानने की आवश्यकता होती है। कभी-कभी लागत यह स्पष्टीकरण नहीं दे पाती कि योजना से क्या लाभ होंगे या होंगे भी या नहीं। कभी-कभी नियोजन की

व्यवहार्यता को जाँचने के लिए कई आकस्मिक व्यय; जैसे-व्यावसायिक विशेषज्ञों के साथ वाद-विवाद, परिषद् कक्ष मीटिंग तथा प्रारंभिक खोजबीन करने पड़ते हैं।

5. नियोजन समय नष्ट करने वाली प्रक्रिया है-कभी-कभी योजनाओं को तैयार करने में इतना अधिक समय व्यर्थ हो जाता है कि उन्हें लागू करने के लिए पर्याप्त समय ही शेष नहीं बचता है।

6. नियोजन सफलता का आश्वासन नहीं है–एक उद्यम की सफलता तभी संभव है, जब उसकी सभी योजनाओं को सही प्रकार से बनाया जाए तथा उन्हें उचित रूप से लागू किया जाए। प्रायः प्रत्येक योजना कार्य में परिवर्तित हो जाती है अथवा उसे ठोस रूप प्रदान किया जाता है, वरना वह अमूर्त या सारहीन हो जाती है।

प्रबंधकों की यह सहज प्रवृत्ति होती है कि वे पहले से जाँची गई सफल योजनाओं पर ही विश्वास करते हैं। यह सदैव सही नहीं होता कि कोई योजना, जो पहले सफल हो चुकी है, वही आगे भी काम करेगी। इसके अतिरिक्त अन्य अनभिज्ञ तत्त्व भी होते हैं, जिनका भली-भाँति ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार की झूठी सुरक्षा का भाव तथा आत्मसंतुष्टि सफलता के बजाय असफलता ही प्रदान करती है। यद्यपि इस अपवाद के बाद भी यही कहा जा सकता है कि नियोजन व्यर्थ की कसरत नहीं है। प्राय: यह एक ऐसा यंत्र है, जिसको सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए। नियोजन भविष्य में की जाने वाली कार्यवाही के विश्लेषण को आधार प्रदान करता है, लेकिन यह सभी समस्याओं का हल भी नहीं है।

प्रश्न 10. नियोजन प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? एक प्रबंधक को किस प्रकार कुछ निश्चित तार्किक कदमों का अनुसरण करना चाहिए?

अथवा

नियोजन की प्रक्रिया का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रबन्धक द्वारा नियोजन प्रक्रिया में कौन-कौन से कदम उठाए जाते हैं?

उत्तर--- नियोजन प्रक्रिया

नियोजन से आशय पहले से यह निर्धारित करना है कि हमें/आपको क्या करना है तथा कैसे करना है? यह निर्णय लेने की एक प्रक्रिया है कि हम एक योजना को किस प्रकार तैयार करते हैं। प्राय: नियोजन एक क्रिया है, जिस कारण प्रत्येक प्रबंधक को कुछ निश्चित तर्कसंगत कदमों का पालन करना चाहिए।

1. उद्देश्यों का निर्धारण---- इसके विवरण के लिए दीर्घ उत्तरीय प्रश्न के अन्तर्गत प्रश्न 1 का (ङ) भाग देखें।

2. विकासशील आधार----- नियोजन का संबंध भविष्य से होता है जो अनिर्धारित है तथा प्रत्येक नियोजन का भविष्य में कुछ भी हो सकता हैं, इसलिए वह इस संकटकालीन अवधारणा को उपयोग में लाता है। अत: प्रत्येक प्रबंधक को कुछ अवधारणाएँ भविष्य के विषय हेतु बना लेनी चाहिए। यही अवधारणाएँ आधार कहलाती हैं। अवधारणाएँ ही वस्तुस्थिति अथवा भौतिक आधार हैं, जिनके ऊपर योजनाओं को तैयार किया जाता है। यह भौतिक आधार वर्तमान योजना, पूर्वानुमान या नीतियों से संबंधित कोई भी भूतकालीन सूचना हो सकती है। योजना निर्माताओं को आपस में एकमत होना चाहिए और इसके साथ ही आधार या मान्यताएँ भी सभी के लिए समान होनी चाहिए। सभी प्रबंधक (जो नियोजन में शामिल हैं) जानकार होने चाहिए तथा समान मान्यताओं को उपयोग में लाना चाहिए। पूर्वानुमान, आधार विकसित करने के लिए महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह सूचनाओं को एकत्रित करने की एक तकनीक है। किसी विशेष उत्पाद की माँग के संबंध में पूर्वानुमान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नीति परिवर्तन, पूँजीगत माल की कीमत, ब्याज दर, कर दर आदि के विषय में भी पूर्वानुमान किया जा सकता है। अतः एक सफल नियोजन हेतु यथार्थ पूर्वानुमान आवश्यक है।

3. कार्यवाही की वैकल्पिक विधियों की पहचान--- जब एक बार उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है व मान्यताओं को निश्चित किया जाता है, तो अगला कदम उन पर कार्यवाही करना होता है। कार्यवाही करने और लक्ष्य-प्राप्ति की अनेक विधियाँ हो सकती हैं तथा सभी विधियाँ भली-भाँति जानी-पहचानी होनी चाहिए। जिस भी कार्यविधि को हाथ में लिया जाए, वह भी जानी-पहचानी व स्पष्ट होनी चाहिए। कभी-कभी नए कार्य हेतु भी अधिक व्यक्तियों को उन कार्यों के विचार में शामिल करते हुए सोचा जा सकता है। यदि परियोजना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, तो संगठन में शामिल सदस्यों में परिचर्चा करके अधिक महत्त्वपूर्ण विकल्प के विषय के संबंध में विचार किया जा सकता है।

4. विकल्पों का मूल्यांकन---- अगला कदम प्रत्येक विकल्प के गुण-दोषों के विषय में जानकारी एकत्रित करना है। प्रायः एक ही विकल्प कई रूपों में हो सकता है, जिनकी आपस में तुलना करनी चाहिए। प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों को ध्यान में रखकर प्रत्येक प्रस्ताव के पक्ष-विपक्ष के दोनों पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। 'रिस्क-रिटली ट्रेड ऑफ' वित्तीय योजनाओं में उदाहरण हेतु बहुत सामान्य है। अधिक जोखिमपूर्ण विनियोगों से अधिक आय प्राप्त करना सामान्य बात होती है। इस प्रकार के प्रस्तावों हेतु आय, ब्याज, कर, आय प्रति अंश तथा लाभांश इत्यादि की गणना करने के पश्चात् ही निर्णय लिए जाते हैं। ऐसे प्रस्तावों के लिए निश्चितता अथवा अनिश्चितता की दशा में उचित पूर्वानुमान, आलंकारिक संकल्पना बन जाती है। विकल्पों का मूल्यांकन उनकी व्यवहार्यता व परिणामों को ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

5. विकल्पों का चुनाव---- यह निर्णय लेने के लिए सर्वोत्तम बिंद है। सर्वोत्तम योजना को ही स्वीकृति दी जाना चाहिए तथा उसी को लागू करना चाहिए। निस्संदेह एक सर्वोत्तम योजना ही सर्वाधिक साध्य, लामकारा व कम-से-कम विपरीत परिणामों वाली होती है। बहत-सी योजनाएँ हमेशा अंकगणितीय विश्लेषण के क्षेत्र में नहीं आती हैं। इस प्रकार की अवस्था में प्रबंधकों का अनुभव तथा व्यक्तिनिष्ठता, निर्णय व सामयिक सहज बोध ही सबसे अधिक साध्य विकल्प का चयन करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। कभी-कभी किसी एक सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने की अपेक्षा कुछ योजनाओं के संयोजन का भी चयन किया जा सकता है। प्रबंधक द्वारा सर्वोत्तम संभव प्रणाली का चयन किया जाता है और परिवर्तन व संयोजन को अपनाया जाता है।

6. योजना को लागू करना---- इस कदम के अंतर्गत प्रबंधक के अन्य कार्य भी आते हैं, जिसका सीधा संबंध योजनाओं को लाग करने से है। अत: यह वह कार्य है जो वांछनीय है। उदाहरण के लिए याद योजना अत्यधिक उत्पादन करने हेतु है, तो अधिक मशीनों व अधिक श्रम की जरूरत पड़ेगी। इस कदम की पूर्ति हेतु कार्य करने व मशीनों का क्रय करने के लिए अत्यधिक बड़े संगठन की जरूरत होगी।

7. अनुवर्तन---- यह देखना कि योजनाओं को लागू किया गया अथवा नहीं तथा निर्धारित कार्यक्रम के आधार पर कार्य चल रहा है अथवा नहीं, यह भी नियोजन प्रक्रिया का ही एक अभिन्न अंग है। इस बात का आश्वासन कि योजनाओं को क्रियान्वित तथा उद्देश्यों को पूर्ण किया जा रहा है, समान रूप से महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न 11. प्रबन्ध के एक कार्य के रूप में संगठन के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर--- संगठन का महत्त्व

संगठन कार्यों के निष्पादन द्वारा उद्यम के परिवर्तन को गतिशील व्यावसायिक पर्यावरण के अनुसार बनाने का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। निस्संदेह संगठन कार्य का महत्त्व तभी बनता है, जब यह उद्यम के चालू रहने

और विभिन्न चेतावनियों का सामना करने तथा विकास करने में सहायता प्रदान करता है। अत: किसी व्यवसाय द्वारा कार्यों को पूर्ण करने व लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने हेतु जरूरी है कि संगठन कार्य को उचित ढंग से किया जाए। किसी भी व्यावसायिक उद्यम में संगठन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है

(क) विशिष्टीकरण के लाभ---- संगठन द्वारा कार्यबल के अंतर्गत विभिन्न क्रियाओं के नियम के अनुसार आवंटन में मार्गदर्शन का काम किया जाता है। कर्मचारियों द्वारा एक ही कार्य को निरंतर

रूप से करते रहने से कार्य का भार कम होता है और उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। कर्मचारी निरंतर एक ही कार्य को करने की पुनरावृत्ति से अनुभव प्राप्त करके दक्षता की ओर अग्रसरित होते हैं।

(ख) कार्य करने में संबंधों का स्पष्टीकरण---- इसके द्वारा सम्प्रेषण को स्पष्ट किया जाता है तथा किसे किसको रिपोर्ट करनी है, यह एक-एक करके बताता है। यह सूचना व अनुदेशों के स्थानांतरण में भ्रान्तियों को दूर करता है तथा सोपानिक क्रम के निर्माण में सहायता प्रदान करता है, जिससे उत्तरदायित्व का निर्धारण किया जा सके तथा एक व्यक्ति द्वारा किस सीमा तक अधिकारों का अंतरण किया जा सकता है, इसको स्पष्ट करता है।

(ग) संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग---- संगठन द्वारा सभी भौतिक या द्रव्यात्मक, वित्तीय तथा मानव संसाधनों का युक्तिपूर्वक उपयोग संभव होता है। कार्य का उपयुक्त आवंटन, कार्य को लीपा-पोती से बचाता है और संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग को संभव बनाता है। कार्य के दोहरीकरण से दूर रखता है, जिससे प्रयत्नों व संसाधनों के अपव्ययों को कम किया जा सकता है व संदेहों को रोकने में सहायता प्राप्त होती है।

(घ) परिवर्तनों का अनुकूलन---- प्रायः संगठन प्रक्रिया द्वारा व्यावसायिक इकाइयों को व्यावसायिक पर्यावरण संबंधी परिवर्तनों में समायोजन होने की अनुमति प्रदान की जाती है। इसके द्वारा संगठन संरचना में प्रबंधकीय स्तर का उपयुक्त परिवर्तन व आपसी संबंधों के संशोधनों में पारगमन का मार्ग प्रशस्त किया जाता है तथा संगठन परिवर्तन के बावजूद भी जीवित रहने तथा उन्नति करते रहने संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।

(ङ) प्रभावी प्रशासन--- संगठन द्वारा कार्यों व उससे सम्बंधित कर्त्तव्यों का स्पष्ट विवरण दिया जाता है, जो अस्थिरता तथा पुनरावृत्ति से बचाता है। कार्यकरण के अंतर्गत स्पष्ट सम्बंध स्थापित होने के कारण कार्य को ठीक प्रकार से निष्पादित किया जाता है। अत: संगठन का प्रबंध स्पष्ट होता है और प्रशासन द्वारा प्रभावपूर्ण रूप से कार्य किया जाता है।

(च) कार्मिकों का विकास--- संगठन द्वारा प्रबंधकों में उत्पादकता अथवा सृजनात्मकता को बढ़ावा दिया जाता है। प्रबंधकों द्वारा अपने अधीनस्थों को दिन-प्रतिदिन के कार्यों के अधिकार अंतरण से उनका कार्यभार भी कम हो जाता है। अधिकार अंतरण के माध्यम से कार्यभार करना मात्र इसलिए जरूरी नहीं कि एक व्यक्ति विशेष की कार्यक्षमता सीमित है, अपितु इसके माध्यम से प्रबंधकों को कार्य करने की नई विधियों को विकसित करने का ज्ञान प्राप्त होता है। इससे प्रबंधकों को कम्पनी की प्रतियोगी अवस्था को सुरक्षित बनाने तथा नवीनीकरण हेतु नए क्षेत्र व विकास हेतु उचित अवसर प्राप्त होते हैं। अधिकार अंतरण द्वारा अधीनस्थ कर्मचारियों को कठिनाइयों का प्रभावशाली तरीके से सामना करने तथा अपनी सामर्थ्य क्षमता को समझने में सहायता प्रदान की जाती है।

(छ) विकास एवं विस्तार---- संगठन द्वारा एक उद्यम को वर्तमान तौर-तरीकों से नवीनतम आयामों में परिवर्तित होने में सहायता प्रदान की जाती है। संगठन उद्यमों में कार्य स्थिति तथा विभिन्न भागों में वृद्धि करता है, चालू कार्यक्षेत्रों में नए भौगोलिक भू-भागों को जोड़ता है तथा उत्पादन क्रियाओं में विभिन्नता लाता है, जिसके कारण ग्राहकों, विक्रय व लाभ में बढ़ोतरी होती है।

अत: हम कह सकते हैं कि संगठन एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रबंधक उद्यम में विद्यमान अव्यवस्थाओं को समाप्त कर सकते हैं, सामूहिक कार्य भावना के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार कर सकते हैं तथा कर्मचारियों में काम अथवा उत्तरदायित्व से सम्बन्धित झगड़ों में कमी कर सकते हैं।

प्रश्न 12. संगठन ढाँचे कितने प्रकार के होते हैं? सविस्तार वर्णन कीजिए।

उत्तर--- संगठन ढाँचो के प्रकार

प्रायः संगठनों के द्वारा अपनाए गए संगठन ढाँचों के रूप क्रियाओं के रूपों तथा उनकी प्रकृति के आधार पर पृथक्-पृथक् होते हैं। संगठनीय ढाँचों को दो भागों में बाँटा जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं---

1. कार्यात्मक संगठन ढाँचा---- लघुउत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 10 का अध्ययन करें।

कार्यात्मक संगठन ढाँचे के गुण---- कार्यात्मक संगठन ढाँचे के विभिन्न गुण होते हैं, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण गुणों का वर्णन निम्नलिखित है---

(क) कार्यात्मक संगठन ढाँचे द्वारा व्यावसायिक विशिष्टीकरण की ओर प्रेरित किया जाता है, क्योंकि विशिष्ट कार्य पर ही जोर दिया जाता है। इसके द्वारा मानव शक्ति के उपयोग में दक्षता को प्रोत्साहित किया जाता है, क्योंकि कर्मचारियों द्वारा विभाग में एक ही कार्य को किया जाता है और अपनी कार्यविधि को उन्नतशील बनाया जाता है।

(ख) विभाग के अंतर्गत नियंत्रण व सामंजस्य उन्नतशील होते हैं, क्योंकि एक ही कार्य को बार-बार किया जाता है।

(ग) यह प्रबंधकीय व संचालन से संबद्ध कौशल में वृद्धि करने में सहायता करता है, जिसका परिणाम अत्यधिक लाभकारी होता है।

(घ) यह पुनरावृत्ति को भी कम करता है, जिससे आर्थिक बचत अधिक व लागत कम होती है।

(ङ) यह कर्मचारियों के प्रशिक्षण को सरल बनाता है, क्योंकि कार्य का क्षेत्र छोटा ही होता है।

(च) इसके माध्यम से सभी कार्यों पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया जाता है।

कार्यात्मक ढाँचे के दोष---- कार्यात्मक संगठन ढाँचे में गुण होने के साथ कुछ दोष भी होते हैं। इसे अपनाने से पूर्व एक संगठन को कुछ निम्नलिखित बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए---

(क) इसमें कार्याध्यक्ष द्वारा बताए गए कार्यों की अपेक्षा संस्थान के अन्य सभी उद्देश्यों पर कम ध्यान दिया जाता है, क्योंकि यह विधि कार्य की प्रधानता की ओर ले जाती है जबकि किसी विशिष्ट कार्य के महत्त्व पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए। संगठनात्मक के हितों की अपेक्षा विभागीय हितों पर ध्यान देना दो अथवा अधिक विभागों के समन्वय में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

(ख) संगठन में बढ़ोतरी हो जाने से विभागों की संख्या में भी वृद्धि होनी अपेक्षित है तथा इस कारण ही सही समन्वय स्थापित नहीं हो पाता और निर्णयों में भी देरी हो जाती है।

(ग) जब दो अथवा अधिक विभागों के हित प्रतिकूल हों, तो हितों में विवाद होना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए-विक्रय विभाग की ग्राहक इच्छा तथा डिजाइन पर जोर देना उत्पादन में बाधाएँ उत्पन्न कर सकता है।

इस प्रकार के विवाद संगठन के हितों की पूर्ति में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं तथा अंतर्विभागीय विवाद भी स्पष्ट उत्तरदायित्व विभाजन के बगैर खड़े हो सकते हैं।

(घ) इसके कारण अस्थिरता जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है अर्थात् एक ही बुद्धिमत्ता व ज्ञान के आधार पर व्यक्तियों में संकुचित सापेक्ष महत्त्व पनप सकता है, जिसके कारण किसी अन्य विचारधारा को महत्त्व देने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। कार्यप्रधान उच्च प्रबंध स्तरीय प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे विभिन्न क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते।

कार्यात्मक ढाँचे की उपयुक्तता---- इसकी उपयुक्तता उन संगठनों/संस्थानों हेतु उपयुक्त है, जो आकार में बहुत बड़े हैं तथा जहाँ संचालन में उच्च कोटि के विशिष्टीकरण की आवश्यकता है तथा क्रियाओं में विविधता है।

2. प्रभागीय संगठन ढाँचा-लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 10 का अध्ययन करें।

प्रभागीय संगठन ढाँचे के गुण---- इसमें बहुत-से गुण विद्यमान होते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख गुणों का वर्णन निम्नलिखित है---

(क) प्रभाग द्वारा अध्यक्ष की, उत्पाद विशेषीकरण की तथा उसकी प्रवीणता को विकसित किया जाता है जिससे वे उच्च पदों पर पदोन्नति हेतु तैयार हो जाते हैं क्योंकि प्रभाग अध्यक्ष किसी विशिष्ट उत्पाद संबंधी सभी कार्यों का भली-भाँति अभ्यास कर लेते हैं।

(ख) प्रभाग अध्यक्ष लाभ के प्रति उत्तरदायी होते हैं। किसी भी प्रभाग संबंधी लागत व वर्तमान गणना सरलतापूर्वक की जा सकती है तथा उसे निर्धारित किया जा सकता है और इसके द्वारा कार्य की

निष्पादन गणना को ठीक आधार प्राप्त हो जाता है। इसके द्वारा उत्तरदायित्व की निश्चितता में भी सहायता की जाती है। यदि किसी प्रभाग का कार्य संतोषप्रद नहीं होता, तो उचित सुधारात्मक कार्यवाही भी की जा सकती है।

(ग) एक स्वतंत्र इकाई होने की वजह से प्रत्येक प्रभाग शीघ्र ही निर्णय ले सकता है, अत: पहल व लचीलेपन को प्रोत्साहन मिलता है।

(घ) नई उत्पादन इकाई को शुरू करने हेतु केवल प्रभाग प्रधान व कर्मचारियों की नियुक्ति की जरूरत होती है। इसमें वर्तमान इकाइयों की ओर से किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती तथा विकास व उन्नति हेतु सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं।

प्रभागीय संगठन ढाँचे के दोष---- प्रभागीय संगठन ढाँचे के कुछ दोष भी होते हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन निम्नलिखित है----

(क) विभिन्न प्रभागों के बीच कोषों के आवंटन से सम्बद्ध झगड़े भी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त किसी विशेष प्रभाग द्वारा अन्य प्रभागों की कीमत पर अत्यधिक लाभ का प्रयत्न भी किया जा सकता है।

(ख) इसके अंतर्गत कार्य की बार-बार पुनरावृत्ति हो जाने के कारण लागत मूल्य में बढ़ोतरी हो सकती है। जब प्रत्येक प्रभाग से एक ही कार्य करवाने हेतु अलग सामग्री दी जाएगी, तो लागत मूल्य में बढ़ोतरी होगी ही।

(ग) यह किसी विशेष प्रभाग को पर्यवेक्षण के लिए प्रबंधक अधिकारों के साथ नियुक्त करते हैं। इस प्रकार प्रबंधक अधिकार तो प्राप्त करते हैं, परंतु स्वयं को स्वतंत्र रूप में स्थापित करने के असमंजस में संगठन के हितों की अनदेखी कर देते हैं।

प्रभागीय संगठन ढाँचे की उपयुक्तता–- यह उन व्यावसायिक ईकाइयों हेतु उपयुक्त है, जहाँ विभिन्न प्रकार के उत्पादों का अत्यधिक मात्रा में उत्पादन किया जाता है और विभिन्न प्रकार से संसाधनों का उपयोग किया जाता है। जब एक संगठन आगे की ओर बढ़ता है तथा कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करना चाहता है, तो अधिक विभागों को बनाकर नए प्रकार के स्तर का प्रबंध लाना चाहता है, तो उसके द्वारा प्रभागीय संगठन ढाँचा ही अपनाया जाएगा।

(घ) इसके कारण अस्थिरता जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है अर्थात् एक ही बुद्धिमत्ता व ज्ञान के आधार पर व्यक्तियों में संकुचित सापेक्ष महत्त्व पनप सकता है, जिसके कारण किसी अन्य विचारधारा को महत्त्व देने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। कार्यप्रधान उच्च प्रबंध स्तरीय प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे विभिन्न क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते।

कार्यात्मक ढाँचे की उपयुक्तता---- इसकी उपयुक्तता उन संगठनों/संस्थानों हेतु उपयुक्त है, जो आकार में बहुत बड़े हैं तथा जहाँ संचालन में उच्च कोटि के विशिष्टीकरण की आवश्यकता है तथा क्रियाओं में विविधता है।

2. प्रभागीय संगठन ढाँचा---- लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 10 का अध्ययन करें।

प्रभागीय संगठन ढाँचे के गुण---- इसमें बहुत-से गुण विद्यमान होते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख गुणों का वर्णन निम्नलिखित है---

(क) प्रभाग द्वारा अध्यक्ष की, उत्पाद विशेषीकरण की तथा उसकी प्रवीणता को विकसित किया जाता है जिससे वे उच्च पदों पर पदोन्नति हेतु तैयार हो जाते हैं क्योंकि प्रभाग अध्यक्ष किसी विशिष्ट उत्पाद संबंधी सभी कार्यों का भली-भाँति अभ्यास कर लेते हैं।

(ख) प्रभाग अध्यक्ष लाभ के प्रति उत्तरदायी होते हैं। किसी भी प्रभाग संबंधी लागत व वर्तमान गणना सरलतापूर्वक की जा सकती है तथा उसे निर्धारित किया जा सकता है और इसके द्वारा कार्य की निष्पादन गणना को ठीक आधार प्राप्त हो जाता है। इसके द्वारा उत्तरदायित्व की निश्चितता में भी सहायता की जाती है। यदि किसी प्रभाग का कार्य संतोषप्रद नहीं होता, तो उचित सुधारात्मक कार्यवाही भी की जा सकती है।

(ग) एक स्वतंत्र इकाई होने की वजह से प्रत्येक प्रभाग शीघ्र ही निर्णय ले सकता है, अत: पहल व लचीलेपन को प्रोत्साहन मिलता है।

(घ) नई उत्पादन इकाई को शुरू करने हेतु केवल प्रभाग प्रधान व कर्मचारियों की नियुक्ति की जरूरत होती है। इसमें वर्तमान इकाइयों की ओर से किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती तथा विकास व उन्नति हेतु सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं।

प्रभागीय संगठन ढाँचे के दोष---- प्रभागीय संगठन ढाँचे के कुछ दोष भी होते हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन निम्नलिखित है----

(क) विभिन्न प्रभागों के बीच कोषों के आवंटन से सम्बद्ध झगड़े भी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त किसी विशेष प्रभाग द्वारा अन्य प्रभागों की कीमत पर अत्यधिक लाभ का प्रयत्न भी किया जा सकता है।

(ख) इसके अंतर्गत कार्य की बार-बार पुनरावृत्ति हो जाने के कारण लागत मूल्य में बढ़ोतरी हो सकती है। जब प्रत्येक प्रभाग से एक ही कार्य करवाने हेतु अलग सामग्री दी जाएगी, तो लागत मूल्य में बढ़ोतरी होगी ही।।

(ग) यह किसी विशेष प्रभाग को पर्यवेक्षण के लिए प्रबंधक अधिकारों के साथ नियुक्त करते हैं। इस प्रकार प्रबंधक अधिकार तो प्राप्त करते हैं, परंतु स्वयं को स्वतंत्र रूप में स्थापित करने के असमंजस में संगठन के हितों की अनदेखी कर देते हैं।

प्रभागीय संगठन ढाँचे की उपयुक्तता–- यह उन व्यावसायिक ईकाइयों हेतु उपयुक्त है, जहाँ विभिन्न प्रकार के उत्पादों का अत्यधिक मात्रा में उत्पादन किया जाता है और विभिन्न प्रकार से संसाधनों का उपयोग किया जाता है। जब एक संगठन आगे की ओर बढ़ता है तथा कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करना चाहता है, तो अधिक विभागों को बनाकर नए प्रकार के स्तर का प्रबंध लाना चाहता है, तो उसके द्वारा प्रभागीय संगठन ढाँचा ही अपनाया जाएगा। .

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि व्यवसाय द्वारा गतिशील पर्यावरण में कार्य किया जाता है तथा वे उद्यम जो स्वयं को परिवर्तित होते वातावरण के अनकल नहीं ढाल पाते, चालू रह पाने में समर्थ नहीं होते हैं। अत: प्रबंध के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह अपने नियोजन व उद्देश्यों की लगातार पुनरावृत्ति करता रहे और उद्यम के संगठनात्मक ढाँचे मे समयानुसार (यदि आवश्यक हो तो) सुधार भी करता रहे। उपक्रम के उददेश्यों की उपलब्धियों के लिए संगठनात्मक ढाँचा हमेशा सहायक तथा पहल करने हेतु सुअवसर देने वाला होना चाहिए, जिससे कार्मिकों का सहयोग अत्यधिक व प्रभावशाली हो सके।

प्रश्न 13. नियुक्तिकरण का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके महत्व एवं आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- अर्थ---- सांगठनिक ढाँचे के नियोजन तथा चयन के पश्चात् प्रबंधन प्रक्रिया का अगला चरण संगठन के अंतर्गत रिक्त पदों को भरना है, जिसे प्रबंधन का 'कार्मिक फलन' अथवा 'नियुक्तीकरण' कहते हैं, अन्य शब्दों में, नियुक्तीकरण से तात्पर्य लोगों को कार्यरत करना है। यह कार्यबल नियोजन से शुरू होता है तथा इसके अंतर्गत अन्य कार्य; जैसे-भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, विकास पदोन्नति, क्षतिपूर्ति व कार्यबल निष्पादन मूल्यांकन/आंकलन शामिल हैं। अन्य शब्दों में, नियुक्तीकरण प्रबंधन प्रक्रिया का वह भाग है जिसका संबंध संतुष्ट व संतुष्ट करने वाले कार्यबल के प्राप्तीकरण उपयोग तथा रखरखाव से है। वर्तमान में नियुक्तीकरण के अंतर्गत कर्मचारियों के सम्मिश्रण में दैनिक श्रमिक, अनुबंधित कर्मचारियों तथा सलाहकार को शामिल किया जा सकता है। नियुक्तीकरण किसी संगठन द्वारा नियुक्त किए गए प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत तौर पर मान्यता प्रदान करता है, जो अंततः कार्य निष्पादित करता है। व्यावसायिक संगठन के अंतर्गत नियुक्तीकरण को भर्ती करने तथा कर्मचारियों की संख्यां पूरी रखने से संबद्ध प्रबंधकीय कार्य करने के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति सबसे पहले श्रम-शक्ति की आवश्यकता की पहचान करके साथ ही भर्ती, चयन,

प्रतिनियुक्ति, पदोन्नति, मूल्य-निर्धारण एवं व्यक्तिगत विकास के द्वारा व्यावसायिक संगठनों द्वारा अभिकल्पित भूमिकाओं की पूर्ति के लिए की जा सकती है।

नियुक्तीकरण प्रक्रिया, एक नए उद्यम में नियोजन एवं सांगठनिक प्रक्रियाओं को निष्पादित करती है। यह निर्णय के पश्चात् कि क्या क्रियाएँ करनी चाहिए, इन्हें किस प्रकार निष्पादित किया जाएगा तथा सांगठनिक संरचना बनाने के बाद प्रबंधक यह जानने की स्थिति में होते हैं कि संगठन के विविध स्तर पर किन मानव संसाधनों की जरूरत है। एक बार जब संख्या व किस प्रकार के कर्मचारियों का चयन निर्धारित हो जाता है, तब प्रबंधक द्वारा भर्ती, चयन व कर्मचारियों के प्रशिक्षण से संबंधित क्रियाएँ शुरू की जाती हैं जिससे वह संगठन के नियुक्तीकरण की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। नियुक्तीकरण, एक पूर्वस्थापित उद्यम में एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि नए कार्यों का सृजन किया जा सकता है तथा कुछ कार्यरत कर्मचारी संगठन को छोड़कर भी जा सकते हैं।

नियुक्तीकरण की आवश्यकता तथा महत्त्व

किसी भी संस्था में कार्य-निष्पादन के लिए कर्मचारियों की आवश्यकता होती है तथा प्रबंधन की नियुक्तीकरण प्रक्रिया इन आवश्यकताओं को परा करती है एवं सही पदों हेतु सही व्यक्तियों का प्रबंध करती है। नियुक्तीकरण द्वारा सांगठनिक संरचना में आधारभत रूप से रिक्त पदों की पूर्ति की जाती है, क्योंकि उपयुक्त नियुक्ति करते समय योग्य कर्मचारियों का चयन होना चाहिए, इसलिए मानवीय तत्त्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

नियुक्तीकरण कर्मचारियों का चयन करते समय मानवीय तत्त्वों तथा मूल प्रकृति या सहजता को प्रदान करता है। वहीं संगठन योग्यता, अभिवृत्ति, निष्ठा तथा वचनबद्धता जैसे महत्त्वपूर्ण गुणों को ध्यान में रखता है। इसको एक विशिष्ट क्षेत्र भी माना गया है तथा इस विषय पर विस्तृत ज्ञान से संबंधित सिद्धांत भी उपलब्ध हैं। श्रेष्ठतम परिणाम हेतु नियुक्तीकरण के विभिन्न पक्षों; जैसे-चयन, आवश्यकता, क्षतिपूर्ति व प्रलोभन, प्रशिक्षण व विकास पर किए गए अनुसंधानों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

किसी भी व्यवसाय की आधारशिला 'मानव संसाधन' होते हैं। वहीं योग्य व्यक्ति व्यवसाय को सर्वोच्च शिखर तक तथा गलत व्यक्ति व्यवसाय को गर्त में पहुँचा सकते हैं। अत: नियुक्तीकरण सांगठनिक निष्पत्ति यधिक आधारभूत एवं आलोचनात्मक प्रवृत्ति है। वर्तमान के तीव्र तकनीकी विकास में संगठन के बढ़ते आकार व व्यक्तियों के व्यवहार की जटिलता को देखते हए नियक्तीकरण के महत्त्व में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई है। किसी भी संगठन की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण परिसंपत्ति “मानव संसाधन' हैं तथा किसी भी संगठन के लक्ष्यों को पूर्ण करना उसके मानवीय संसाधनों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है इसलिए नियुक्तीकरण एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रबंधकीय प्रक्रिया है। कोई भी संस्था तब ही

सफल हो सकती है, जब वह अपनी सांगठनिक संरचना में विभिन्न पदों पर सही कर्मचारियों की नियुक्ति कर पाने में समर्थ हो।

प्रश्न 14. नियुक्तिकरण प्रक्रिया का अर्थ बताते हुए उचित परिभाषा भी दीजिए तथा इसके अन्तर्गत विभिन्न चरणों का वर्णन भी कीजिए।

उत्तर---- नियुक्तिकरण प्रक्रिया से आशय

नियुक्तीकरण प्रक्रिया का प्रबंध की प्रक्रिया में पहला कार्य संगठन में कार्य-शक्ति की आवश्यकताओं को समय पर पूरा करना है। इस प्रकार की आवश्यकताएँ प्रासंगिक भी हो सकती हैं, जैसे नया उद्यम शुरू करते समय अथवा स्थापित उद्यम के विस्तृतीकरण हेतु या यह उस दौरान भी उत्पन्न हो सकती हैं जब काई व्यक्ति अथवा कर्मचारी संस्था छोड़कर जाता है, उसकी पदोन्नति या स्थानांतरण होता है, सेवानिवृत्त होता है अथवा उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है।

किसी भी स्थिति में सही पदों पर ठीक व्यक्तियों की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता किंतु ठीक उसी मुहावरे की तरह कि "सब जगह पानी-ही-पानी है लेकिन पीने के पानी की एक बूंद भी नहीं है।' इस मुहावरे का अर्थ है कि पृथ्वी के दो-तिहाई भाग पर जल होने के बाद भी, पीने योग्य पानी एक दुर्लभ वस्तु है, 'सही पद हेतु सही कर्मचारियों को खोजना,' पर भी यह लागू होता है। ऐसे में यह जरूरी है कि नियुक्तीकरण को एक महत्वपूर्ण क्रिया के रूप में समझने की (जो कार्य-शक्ति की आवश्यकताओं को समझने से शुरू होती है, चाहे वह संगठन की अपनी आंतरिक जरूरत से संबद्ध हो अथवा उन संभावित स्रोतों के माध्यम से जिनकी पूर्ति संगठन के बाह्य स्रोतों से होती है। आवश्यकता होती है। यह तो सत्य है कि उचित व्यक्ति दुर्लभ है। अत: ऐसे बाजार की आवश्यकता है, जो लोगों को नौकरी एवं संस्थाएँ दोनों ही उपलब्ध कराने में सक्षम हो। यहाँ तक कि ऐसी परिस्थितियों में जब एक रिक्त पद हेतु सैकड़ों/हजारों की संख्या में आवेदन करने वाले प्रत्याशियों के आवेदन-पत्र आते हैं और सर्वाधिक योग्य कर्मचारी का चयन एक चुनौती है। संस्था के कार्यों के सामान्य निष्पादन के लिए नए कर्मचारियों को अभिविन्यास/प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है और ऐसी परिस्थिति में (जहाँ कर्मचारियों का चयन केवल शैक्षणिक योग्यताओं तथा सीखने की क्षमता के आधार पर किया जाता है) उन्हें विशिष्ट कौशलों में प्रशिक्षण की भी आवश्यकता पड सकती है। उदाहरण क लिए-यदि किसी व्यक्ति को उसके बहिर्मुखी होने पर एवं उसे अंग्रेजी भाषा का अच्छा जान है तथा उसे व्यवसाय प्रक्रिया बाह्य स्रोतीकरण (B.P.O.) से लिया जाता है, तो उसे भी वास्तविक कार्यस्थल पर रखने से पूर्व प्रासंगिक व्यावसायिक प्रक्रियाओं में दूरभाष-संवाद, शिष्टाचार व शैली-रूपान्तर में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। कर्मचारी अभिविन्यास एवं कार्यस्थल पर हुए अनुभवों के आधार पर ही संगठन की पहली छवि बनाता है और यह आप भली-भाँति जानते हैं कि प्रथम

अनुभव छवि ही अंतिम छवि होती है। कर्मचारियों को कार्य करते हुए भी अपने ज्ञान व कौशलों में वृद्धि तथा उच्च उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। अत: कर्मचारी-प्रशिक्षण एवं विकास नियुक्तीकरण प्रक्रिया के अन्य दूसरे महत्त्वपूर्ण पहलू हैं।

वेहरीच एवं कण्ट्ज के अनुसार, "प्रबन्धकीय कार्य नियुक्तिकरण के अन्तर्गत संगठनात्मक ढाँचे में विभिन्न पदों को भरना और उनको भरे रहने देना सम्मिलित है।" ।

कण्ट्ज एवं ओ डोनेल के अनुसार, "नियुक्ति में संगठन संरचना का जन-प्रबन्ध सम्मिलित है, जो कर्मचारियों का उचित एवं प्रभावी चयन, मूल्यांकन तथा नियुक्त व्यक्तियों का विकास करना है, ताकि वे संगठन-संरचना के अनुसार योगदान कर सकें।'

नियुक्ति प्रक्रिया के विभिन्न चरण

नियुक्ति प्रक्रिया के विभिन्न चरण निम्नलिखित हैं---

(क) मानव-शक्ति आवश्यकताओं का आकलन---- आप भली-भाँति परिचित हैं कि सांगठनिक ढाँचे की रूपरेखा बनाते समय हम विभिन्न निर्णयों एवं निर्णायक स्तरों का विश्लेषण करते हैं तथा इसके साथ ही ढाँचे के समतल व ऊर्ध्वाधर आयामों के क्रम-विकास का ध्यान रखकर विभिन्न क्रियाकलापों तथा उनके बीच स्थापित संबंधों का भी विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार ही विभिन्न प्रकार के पदों का सृजन होता है। स्पष्ट रूप से प्रत्येक कार्य-पद के निष्पादन हेतु उस कर्मचारी की नियुक्ति की जरूरत होती है, जिसके पास विशेष शैक्षणिक योग्यता, पूर्व-अनुभव तथा कौशल इत्यादि हैं। इस प्रकार मानव-शक्ति की आवश्यकताओं को समझना मात्र यह जानना नहीं कि कितने व्यक्तियों की आवश्यकता है, अपितु यह जानना है कि किस प्रकार के व्यक्तियों/कर्मचारियों की आवश्यकता है। इसके पश्चात् यह आवश्यक है कि महिलाओं को प्रोत्साहन दिया जाए, पिछड़े समुदाय के व्यक्तियों को, विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियों को (जैसे-शारीरिक अक्षमता वाले व्यक्ति, जिन्हें कम दिखाई अथवा सुनाई देता है) भी प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है जिससे वे भी हमारे संगठनों/संस्थाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हो सकें तथा इसके अनुसार मानव-शक्ति की आवश्यकताओं को पुन: परिभाषित किया जा सके।

(ख) कर्मचारियों की भर्ती---- संभावित कर्मचारियों को खोजने की प्रक्रिया तथा उन्हें संगठन में पदों हेतु आवेदन देने के लिए प्रेरित करने को ही 'भर्ती' कहा जाता है। 'रिक्त-पदों' का विज्ञापन बनाते समय वे सूचनाएँ जो पद-विवरण और प्रत्याशियों की रूपरेखा बनाने के दौरान एकत्रित की गई थीं, उनका प्रयोग भी किया जा सकता है। इस विज्ञापन को कारखाने अथवा कार्यालय के दरवाजे पर भी लगाया जा सकता है अथवा विद्युत या छपाई के माध्यम से भी प्रकाशित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में संभावित प्रत्याशियों की तलाश करना अथवा वे स्रोत जहाँ से संभावित प्रत्याशी लिए जा सकते हैं, पता लगाना, शामिल है। निस्संदेह बाद में जब हम भर्ती के विभिन्न स्रोतों को वर्णित करेंगे,

तो उन सभी भर्ती के मार्गों के बारे में भी विवेचना करेंगे, जो किसी फर्म में वहद संख्या में उपलब्ध हैं। अनिवार्य तौर पर लक्ष्य यह है कि संभावित पद प्रत्याशियों हेत एक निकाय बनाया जाए। आंतरिक स्रोतों को एक सीमित रूप में प्रयोग किया जा सकता है। बाह्य स्रोतों का प्रयोग नए प्रतिभाशाली व्यक्तियों तथा विस्तृत विकल्प के लिए किया जाता है।

इसकी नियुक्ति दो प्रकार से की जाती है---

(i) आन्तरिक स्रोत--- इसके अन्तर्गत जो कर्मचारी पहले से ही संस्था में कार्यरत होते हैं, उनको ही अन्य पदों के लिए पदोन्नति देकर या स्थानान्तरण के द्वारा चुना जाता है।

(i) बाह्य स्रोत---- इस दशा में कर्मचारियों की भर्ती हेतु विभिन्न स्रोतों का सहारा लिया जाता है; जैसे-- प्रत्यक्ष भर्ती, स्थापन एजेंसी एवं प्रबन्ध परामर्शदाता, वैब प्रसारण, प्रतीक्षा सूची, जॉबर एवं ठेकेदार, शिक्षण संस्थाएँ,विज्ञापन अथवा दूरदर्शन माध्यम, रोजगार कार्यालय एवं वर्तमान कर्मचारियों की सिफारिश आदि। आन्तरिक स्रोतों का प्रयोग एक सीमित रूप में किया जा सकता है जबकि नए प्रतिभावान व्यक्तियों के लिए तथा विस्तृत विकल्प के लिए बाह्य-स्रोतों का प्रयोग ही किया जाता है।

(ग) आवेदकों में से चयन---- यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो भर्ती के दौरान बनाए गए संभावित पद-प्रत्याशियों के निकाय में से कर्मचारियों का चयन करती है। यहाँ तक कि उन अत्यंत विशेष पदों हेतु भी जहाँ विकल्प कम हैं। चयन प्रक्रिया की जटिलता दो मुख्य प्रयोजनों की पूर्ति करती है----(i) यह सुनिश्चित करती है कि संस्था को उपलब्ध व्यक्तियों में सबसे योग्य नियुक्त हों, (ii) यह चयनित कर्मचारियों के सम्मान तथा प्रतिष्ठा में वृद्धि करती है तथा उनके समक्ष इस बात को भी स्पष्ट करती है कि संगठन में यह प्रक्रिया किस गंभीरता से की जाती है। इनमें विविध प्रकार की परीक्षाएँ व साक्षात्कार शामिल हैं, जिनका वर्णन बाद में किया गया है। जो व्यक्ति परीक्षा व साक्षात्कार में सफल होते हैं, उन्हें रोजगार-अनुबंधन का प्रस्ताव दिया जाता है, जो एक लिखित प्रपत्र है तथा जिसमें रोजगार सम्बधी प्रस्ताव, अवधि व शर्ते और किस दिन संस्था में कार्यभार संभालना है आदि को उल्लिखित किया गया होता है।

(घ) अनुस्थापन तथा अभिविन्यास---- कर्मचारियों के समाजीकरण का आरंभ कार्यस्थल पर उनके द्वारा पदभार संभालते ही हो जाता है। कर्मचारियों को कंपनी के विषय में एक संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण दिया जाता है और उनके उच्चाधिकारियों, अधीनस्थ व सहकर्मियों से उनको परिचित करवाया जाता है। उन्हें कार्यस्थल पर ले जाया जाता है और इसके पश्चात् उनका जिस पद हेतु चयन किया गया है, उसका कार्यभार सौंपा जाता है। संस्था से परिचय करवाने की यह प्रक्रिया अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जो कर्मचारियों के कार्य-निष्पादन व यह निर्णय कि वह संस्था में टिके रहे पर एक दूरगामी प्रभाव डालती है। इस प्रकार अभिविन्यास-प्रक्रिया द्वारा कर्मचारियों को अन्य कर्मचारियों से मिलवाने का अवसर

प्रदान किया जाता है और उन्हें संस्था के नियमों व नीतियों से अवगत कराया जाता है। अनुस्थापन से आशय कर्मचारी के पदभार ग्रहण करने से है, जिसके लिए उसको चुना गया है।

(ङ) प्रशिक्षण तथा विकास--- व्यक्ति केवल नौकरी प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते, अपितु एक जीवन-वृत्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को उच्च पदों पर पहुँचने का सुअवसर अवश्य मिलना चाहिए। इन सुअवसरों को देने की सर्वोत्तम विधि कर्मचारियों को सीखने की सुविधा देना है। संगठन के पास या तो अपने संस्थान में ही प्रशिक्षण केंद्र हैं अथवा उन्होंने अपने कर्मचारियों के सतत् प्रशिक्षण के लिए अन्य प्रशिक्षण व शैक्षणिक संस्थानों से संबंध स्थापित किए हुए हैं। इस प्रक्रिया द्वारा संस्थानों को भी लाभ होता है, कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है, उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है, वे सही ढंग से कार्य को निष्पादित करते हैं तथा इस प्रकार से संगठन की कार्यकुशलता व उसे प्रभावशाली बनाने में अपना अत्यधिक योगदान देते हैं। संस्थाएँ कर्मचारियों को जीवन-वृत्ति में प्रगति व उन्नति के अवसर उपलब्ध कराने से न केवल उन्हें आकर्षित करती हैं, अपितु उन्हें संस्था में प्रतिभावान् व्यक्तियों को बनाए रखने में सामर्थ्य प्रदान करती हैं।

(च) निष्पादन मूल्यांकन---- इसका उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि कर्मचारी अपने पदों की माँगों को पूरा करने में कितना सफल है। सुधार हेतु पुनर्निवेशन होना अत्यंत आवश्यक है। इन मूल्यांकनों को प्रशिक्षण पदोन्नति तथा पारिश्रमिक से संबद्ध विभिन्न उद्देश्यों हेतु उपयोग किया जाता है।

(छ) पदोन्नति एवं भविष्य नियोजन---- संगठन गतिशील होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप लोगों को उच्च पदों की ओर निरंतर प्रगति की आवश्यकता होती है। बहुत-से कर्मचारी अपने वर्तमान पद हेतु अयोग्य सिद्ध हो रहे हैं, इसलिए उचित यही होगा कि उनका उनके कौशल एवं रुचि के अनुसार पदों पर हस्तांतरण कर दिया जाए। इस प्रक्रिया में व्यक्तियों की पदोन्नति, हस्तांतरण तथा अवनति से संबद्ध क्रिया में शामिल है।

(ज) पारिश्रमिक---- किसी भी संगठन की वृहद् समस्या, एक व्यक्ति के वेतन की तुलना उसके योगदान से

करना है। मजदूरी या वेतन का ढाँचा ऐसा होना चाहिए कि वह उचित हो तथा कर्मचारियों को प्रदान करें। पारिश्रमिक से तात्पर्य कर्मचारियों को उनके संगठन हेतु योगदान के बदले प्राप्ति से है। सामान्य तौर पर कर्मचारी अपनी सेवाएँ तीन प्रकार के प्रतिफल हेतु देते हैं-वेतन, सुविधाएँ व प्रलोभन। वहीं भुगतान से आशय मूल मजदूरी व वेतन-भत्ते से है, जो कर्मचारी को अवधि के आधार पर प्राप्त होते हैं। प्रलोभन में बोनस, कमीशन व लाभ में हिस्सेदारी की योजनाओं को शामिल किया जाता है। इनका निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि कर्मचारी साधारण अपेक्षा से कहीं अधिक उत्पादन हेतु प्रोत्साहित हों। कुछ सुविधाएँ; जैसे–चिकित्सा, बीमा, मनोरंजन, अवकाश प्राप्ति आदि परोक्ष पारिश्रमिक हैं। इस प्रकार पारिश्रमिक एक व्यापक शब्द है, जिसके अंतर्गत कर्मचारियों की सेवाओं के बदले

नियोक्ताओं द्वारा दिया जाने वाला भुगतान, सुविधाएँ तथा प्रलोभन शामिल हैं। इसके अतिरिक्त प्रबंधकों द्वारा कुछ कानूनी औपचारिकताएँ भी पूरी की जाती हैं, जो कर्मचारियों को भौतिक व वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती हैं। ये सभी मामले किसी भी मानव संसाधन विभाग के एक प्रभावी, समर्थ, कार्यशक्ति की नियुक्ति करने, कार्य पर बनाए रखने तथा उसकी क्षमता को बनाए रखने के प्रयासों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार आपने देखा कि नियुक्तीकरण एक प्रक्रिया के रूप में किसी भी संस्थान के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण संसाधन (जो मानवीय पूँजी हैं) का अधिग्रहण, प्रतिधारण एवं विकास करती है।

(छ) पदोन्नति एवं भविष्य नियोजन---- संगठन गतिशील होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप लोगों को उच्च पदों की ओर निरंतर प्रगति की आवश्यकता होती है। बहुत-से कर्मचारी अपने वर्तमान पद हेतु अयोग्य सिद्ध हो रहे हैं, इसलिए उचित यही होगा कि उनका उनके कौशल एवं रुचि के अनुसार पदों पर हस्तांतरण कर दिया जाए। इस प्रक्रिया में व्यक्तियों की पदोन्नति, हस्तांतरण तथा अवनति से संबद्ध क्रिया में शामिल है।

(ज) पारिश्रमिक---- किसी भी संगठन की वृहद् समस्या, एक व्यक्ति के वेतन की तुलना उसके योगदान से

करना है। मजदूरी या वेतन का ढाँचा ऐसा होना चाहिए कि वह उचित हो तथा कर्मचारियों को प्रदान करें। पारिश्रमिक से तात्पर्य कर्मचारियों को उनके संगठन हेतु योगदान के बदले प्राप्ति से है। सामान्य तौर पर कर्मचारी अपनी सेवाएँ तीन प्रकार के प्रतिफल हेतु देते हैं-वेतन, सुविधाएँ व प्रलोभन। वहीं भुगतान से आशय मूल मजदूरी व वेतन-भत्ते से है, जो कर्मचारी को अवधि के आधार पर प्राप्त होते हैं। प्रलोभन में बोनस, कमीशन व लाभ में हिस्सेदारी की योजनाओं को शामिल किया जाता है। इनका निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि कर्मचारी साधारण अपेक्षा से कहीं अधिक उत्पादन हेतु प्रोत्साहित हों। कुछ सुविधाएँ; जैसे–चिकित्सा, बीमा, मनोरंजन, अवकाश प्राप्ति आदि परोक्ष पारिश्रमिक हैं। इस प्रकार पारिश्रमिक एक व्यापक शब्द है, जिसके अंतर्गत कर्मचारियों की सेवाओं के बदले नियोक्ताओं द्वारा दिया जाने वाला भुगतान, सुविधाएँ तथा प्रलोभन शामिल हैं। इसके अतिरिक्त प्रबंधकों द्वारा कुछ कानूनी औपचारिकताएँ भी पूरी की जाती हैं, जो कर्मचारियों को भौतिक व वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती हैं। ये सभी मामले किसी भी मानव संसाधन विभाग के एक प्रभावी, समर्थ, कार्यशक्ति की नियुक्ति करने, कार्य पर बनाए रखने तथा उसकी क्षमता को बनाए रखने के प्रयासों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार आपने देखा कि नियुक्तीकरण एक प्रक्रिया के रूप में किसी भी संस्थान के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण संसाधन (जो मानवीय पूँजी हैं) का अधिग्रहण, प्रतिधारण एवं विकास करती है।

प्रश्न 15. निर्देशन का अर्थ बताइए तथा निर्देशन के महत्त्व व सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डालिए।

उत्तर--- निर्देशन का अर्थ

निर्देशन प्रबन्ध का वह कार्य होता है जो संस्था में लगे कर्मचारियों को एक दल के रूप में कार्य करने हेतु मार्गदर्शन तथा प्रेरणा देता है। अन्य शब्दों में निर्देशन के अन्तर्गत संस्था में कार्य करने वाले व्यक्तियों को यह बताया जाता है कि उन्हें क्या करना है. कैसे करना है तथा यह निर्देशन करना कि वे व्यक्ति अपने कार्य को ठीक प्रकार से कर रहे हैं या नहीं तथा उन्हें वह कार्य करने में कोई कठिनाई तो नहीं हो रही है।

निर्देशन का महत्त्व

निर्देशन के निम्नलिखित महत्त्व हैं---

1. यह कर्मचारियों के कार्य को आरम्भ करने में मदद करता है---- निर्देशन संस्था के वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यक्तियों के कार्य को शुरू करने में सहायता प्रदान करता है।

2. गतिशीलता प्रदान करना---- प्रबन्ध के प्रथम तीन कार्यों (नियोजन, संगठन एवं नियुक्तिकरण) तक कर्मचारियों की नियुक्ति कर ली जाती है। परन्तु वे अपना कार्य उसी दशा में शुरू करते हैं, जब उनको यह कहा जाता है कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है। यह कार्य प्रबन्धकों द्वारा निर्देशन के माध्यम से किया जाता है।

3. कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना--- निर्देशन से कर्मचारियों का मार्गदर्शन भी होता है जिससे कि वह अपनी क्षमताओं और योग्यताओं का पूर्णतः प्रयोग कर पाते हैं। इसके लिए निर्देशन उन्हें प्रोत्साहित करके प्रभावपूर्ण नेतृत्व भी प्रदान करता है।

4. अभिप्रेरणा का माध्यम-संस्था के उद्देश्यों को पूर्ति अभिप्रेरित कर्मचारी ही करते हैं। ये कर्मचारी पूरी लगन और समर्पण की भावना से कार्य करते हैं। अभिप्रेरण का कार्य प्रबन्ध के निर्देशन कार्य द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

5. संगठन में सन्तुलन स्थापित करना--कभी-कभी व्यक्तिगत और संस्थागत उद्देश्यों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। निर्देशन इन उत्पन्न संघर्षों को दूर करता है तथा संगठन में सन्तुलित स्थिति स्थापित करने में सहायता प्रदान करता है। प्रबन्धक द्वारा कर्मचारियों को निर्देशन के माध्यम से यह बताया जाता है कि वे किस प्रकार कम्पनी के उद्देश्यों को प्राप्त करते हुए अपने उद्देश्यों को पूरा कर सकते हैं।

6. कर्मचारियों के प्रयासों में समन्वय स्थापित करना–एक संगठन में अनेक कर्मचारी कार्यरत होते हैं। इनमें से यदि किसी एक कर्मचारी का कार्य निम्नकोटि का है तो इसका प्रभाव शेष कर्मचारियों की कशलता पर पड़ना स्वाभाविक ही होता है। इस प्रकार सभी कर्मचारियों की क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करना अति आवश्यक होता है। प्रबन्धक कर्मचारियों का पर्यवेक्षण करके, अच्छा नेतृत्व प्रदान करके उनको प्रोत्साहित करके एवं विचारों का आदान-प्रदान करके उनकी क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित कर सकता है।

निर्देशन के सिद्धान्त

प्रभावी व अच्छा निर्देशन प्रदान करना भी एक जटिल कार्य है, क्योंकि इसके अंतर्गत बहत-सी जटिलताएँ भी शामिल हैं। एक प्रबंधक को उन सभी व्यक्तियों के साथ, जिनकी भिन्न पृष्ठभूमि व अपेक्षाएँ हैं संबंध रखना पड़ता है तथा यह निर्देशन-प्रक्रिया को जटिल बना देती है। निर्देशन के कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत हैं, जो निर्देशन-प्रक्रिया में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इन सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है---

(क) अधिकतम व्यक्तिगत योगदान--- इस सिद्धांत द्वारा इस बात पर बल दिया जाता है कि निर्देशन की

तकनीकें संस्था में सभी व्यक्तियों को सहायता प्रदान करें, जिससे कि वे अपनी संभाव्य क्षमताओं का अधिकतम योगदान सांगठनिक उददेश्यों को पूर्ण करने में दे सकें तथा संस्था के कुशल निष्पादन हेतु कर्मचारियों की अप्रयुक्त ऊर्जा को उभारकर प्रयोग में ला सकें। उदाहरण के लिए---एक अच्छी अभिप्रेरणा (नियोजन, वित्तीय व गैर-वित्तीय प्रतिफलों सहित) कर्मचारियों को प्रेरित कर सकती है जिससे वे संस्था के लिए अपने अत्यधिक प्रयत्न कर सकें, क्योंकि इससे उन्हें यह लगेगा कि उनके

प्रयत्नों का उन्हें उपयुक्त प्रतिफल/पारिश्रमिक प्राप्त होगा।

(ख) सांगठनिक उद्देश्यों में तालमेल–प्राय: आपने देखा होगा कि सांगठनिक उद्देश्यों तथा कर्मचारियों के उद्देश्यों में आपस में द्वन्द्व होता है। उदाहरण के लिए-एक कर्मचारी द्वारा अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक आकर्षक वेतन एवं वित्तीय लाभों की अभिलाषा रखी जाती है। संस्था कर्मचारियों से यह अपेक्षा करती है कि वे अपनी उत्पादकता में वृद्धि करें, जिससे वांछित लाभ हो सके। लेकिन अच्छे निर्देशन द्वारा इन दोनों में तालमेल बैठाया जाता है तथा कर्मचारी को यह विश्वास दिलाया जाता है कि कार्यकुशलता व पारिश्रमिक (दोनों) परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं।

(ग) आदेश की एकता--- इस सिद्धांत द्वारा इस बात पर बल दिया जाता है कि कर्मचारी को केवल एक ही उच्चाधिकारी से आदेश मिलने चाहिए। यदि आदेश एक से अधिक उच्चाधिकारियों से मिलते

हैं, तो यह भ्रम पैदा करते हैं और संस्था में अव्यवस्था व द्वंद्व फैलाते हैं। 'आदेश की एकता' सिद्धांत का पालन करने से प्रभावी निर्देशन निश्चित होता है।

(घ) निर्देशन तकनीकों की उपयुक्तता/औचित्य---- इस सिद्धांत के अनुसार, नेतृत्व की तकनीकों व निर्देशन उपयुक्त अभिप्रेरक का प्रयोग करते समय कर्मचारियों की योग्यताओं, आवश्यकताओं, दृष्टिकोण तथा अन्य प्रकार की वस्तु-स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरण के लिए कुछ व्यक्तियों हेतु रुपया एक सशक्त अभिप्रेरक का कार्य कर सकता है, वहीं दूसरी ओर किसी के लिए पदोन्नति एक प्रभावी प्रेरक का कार्य करती है।

(ङ) प्रबंधकीय संप्रेषण---- प्रभावी प्रबंधकीय संप्रेषण संस्था के सभी स्तरों पर निर्देशन को भी प्रभावशाली बनाता है। निर्देशक को अधीनस्थों की संपूर्ण पारस्परिक समझ को विकसित करने के लिए स्पष्ट निर्देश/अनुदेश जारी करने चाहिए। प्रबंधकों को उपयुक्त प्रतिपुष्टि द्वारा यह निश्चित करना चाहिए कि अधीनस्थ उनके निर्देश को स्पष्ट तौर पर समझ रहे हैं।

(च) अनौपचारिक संगठन का प्रयोग---- प्राय: एक प्रबंधक को यह समझना चाहिए कि प्रत्येक औपचारिक संगठन में ही अनौपचारिक संगठन व समूह पाए जाते हैं। प्रबंधक को उन्हें पहचानकर उन संगठनों का उचित उपयोग एक प्रभावी निर्देशन हेतु करना चाहिए।

(छ) नेतृत्व—- प्रबंधक को कर्मचारियों का निर्देशन करते समय एक अच्छे नेतृत्व को प्रदर्शित करना चाहिए, क्योंकि यह अधीनस्थों को बगैर उनके मध्य किसी असंतोष की भावना के सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

(झ) अनुसरण करना-केवल आदेश देना ही पर्याप्त नहीं है। प्रबंधक को निरंतर पुनरीक्षण के माध्यम से अनुसरण करना चाहिए कि उनके आदेशों का सही प्रकार से पालन हुआ है या नहीं अथवा उन्हें किन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। यदि आवश्यक हो तो इस दिशा में उपयुक्त परिवर्तन/संशोधन किए जाने चाहिए।

प्रश्न 16. पर्यवेक्षण से आपका क्या आशय है? पर्यवेक्षण के महत्त्व को संक्षेप में समझाइए।

उत्तर--- पर्यवेक्षण

'पर्यवेक्षण' शब्द को दो प्रकार से समझ सकते हैं। पहला, इसे निर्देशन के रूप में और दूसरा संस्था की क्रम-श्रृंखला में पर्यवेक्षकों द्वारा किए गए एक कार्य-निष्पादन के रूप में समझ सकते हैं। संगठन के प्रत्येक प्रबंधक को निर्देशन के एक तत्त्व के रूप में अपने अधीनस्थों का पर्यवेक्षण करना पड़ता है। अत: पर्यवेक्षण को इस अर्थ में एक प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं, जो वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कर्मचारियों के प्रयत्न के मार्गदर्शन एवं अन्य संसाधनों के उपयोग से संबंधित है। इसका तात्पर्य

है अधीनस्थों द्वारा किए गए कार्यों का निरीक्षण व यह निश्चित करने हेतु कि संसाधनों के अधिकतर प्रयोग तथा कार्य लक्ष्यों को पर्ण करने के लिए अधीनस्थों को जरूरी जरूरी निर्देश देना है। दूसरी ओर पर्यवेक्षण को पर्यवेक्षक के एक कार्य-निष्पादन के रूप में भी समझ सकते हैं। संगठन की क्रम श्रृंखला के क्रियात्मक स्तर पर एक प्रब्नाधकीय पद पर; जैसे-श्रमिकों के तत्काल ऊपर। पर्यवेक्षक का कार्य व निष्पादन किसी संस्था के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह प्रत्यक्षतः श्रमिकों के साथ जुड़ा हुआ है अथवा उनके संपर्क में है, जबकि प्रबंधकोका निम्नतम स्तर पर कार्य कर रहे कर्मचारियों के साथ कोई प्रत्यक्ष संपर्क नहीं होता। पयवक्षण का महत्त्व-पर्यवेक्षण के महत्त्व को पर्यवेक्षक द्वारा निभाई गई विभिन्न भूमिकाओं द्वारा समझ सकते हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है-
--

(क) पर्यवेक्षक प्रतिदिन कर्मचारियों के संपर्क में रहता है और उनसे मित्रतावत संबंध बनाए रखता है। अच्छ पर्यवेक्षक द्वारा श्रमिकों हेत् मार्गदर्शक, मित्र व एक दार्शनिक के रूप में कार्य किया जाता है।

(ख) पर्यवेक्षक द्वारा प्रबंधक एवं श्रमिकों के बीच एक कडी के रूप में कार्य किया जाता है। वह एक ओर

श्रामका को प्रबंध के विचारों को बताता है तो दसरी ओर प्रबंध के समक्ष श्रमिकों की समस्याओं को रखता है। पर्यवेक्षक की यह भूमिका प्रबंधन एवं श्रमिकों/कर्मचारियों के मध्य किसी भी प्रकार की भ्राति का नहीं आने देती और उनके बीच किसी प्रकार के द्वन्द्व से भी बचाती है।

(ग) पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थ श्रमिकों में (जो उसके नियंत्रण में हैं) सामूहिक एकता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसके द्वारा आंतरिक मतभेदों को निपटाया जाता है तथा श्रमिकों में तालमेल बैठाकर रखा जाता है।

(घ) पर्यवेक्षक द्वारा निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर कार्य का निष्पादन सुनिश्चित किया जाता है। वह कार्य

को पूर्ण करने की जिम्मेदारी लेता है और अपने श्रमिकों को प्रभावी तरीके से अभिप्रेरित करता है।

(ङ) पर्यवेक्षक द्वारा कार्यस्थल पर ही कर्मचारियों व श्रमिकों को प्रशिक्षित किया जाता है। एक ज्ञानवान तथा

कुशल पर्यवेक्षक द्वारा ही कार्यकुशल श्रमिकों का दल/समूह तैयार किया जाता है।

प्रश्न 17. अभिप्रेरणा का अर्थ बताइए और इसके महत्त्व की व्याख्या कीजिए।

अथवा

अभिप्रेरणा क्या है? इसके महत्त्व के बारे में समझाइए।

उतर-- अभिप्रेरणा

वह क्या है, जिस कारण व्यक्ति विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करते हैं? क्या कारण है कि कुछ लोग कार्य करने हेतु अपनी इच्छा व्यक्त नहीं करते, जबकि उनमें कार्य करने की योग्यता होती है? क्या करना चाहिए कि व्यक्ति अपना कार्य कुशलतापूर्वक कर सकें?

उपरोक्त सभी प्रश्नों के उत्तर देने हेतु प्रबंधक को अपनी अन्तर्दृष्टि को विकसित करना चाहिए, जिससे वह व्यक्तियों के व्यवहार के कारण भली-भाँति जान सकें। एक प्रबंधक को अत्यधिक उच्च प्रतिबद्ध व मेहनती कर्मचारियों के साथ भी कार्य करना पड़ता है अथवा उसे अस्पष्ट, आलसी तथा सतही श्रमिकों से भी कार्य लेना होता है। संभवतया वे यह आश्चर्य करें कि उन श्रमिकों के साथ क्या करना चाहिए, जो अपनी क्षमतानुसार कार्य करने हेतु इच्छुक ही नहीं हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि वह अभिप्रेरणा है, जो व्यक्तियों को अपनी स्वेच्छा से कार्य करने हेतु प्रेरित करती है।

1. वुडवर्थ के अनुसार, "प्रेरणा व्यक्ति की एक अवस्था या तत्परता है जो उसे किसी निर्धारित व्यवहार तथा निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बाध्य करती है।''

2. शेफर के अनुसार, "अभिप्रेरणा को हम क्रिया की एक ऐसी प्रवृत्ति कह सकते हैं जो चालक के द्वारा उत्पन्न होती है और समायोजन द्वारा समाप्त हो जाती है।"

3. गिलफोर्ड के के अनुसार, "एक प्रेरक कोई विशेष आन्तरिक कारक अथवा अवस्था है, जो क्रिया को जन्म देता है तथा उसे बनाए रखता है।"

अभिप्रेरणा की प्रक्रिया

अभिप्रेरणा की प्रक्रिया व्यक्ति की आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। आगे प्रस्तुत साधारण मॉडल अभिप्रेरणा की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है---

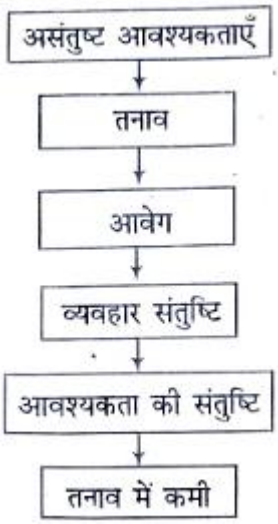

नीचे दिया गया उदाहरण व्यक्ति की आवश्यकताओं की संतुष्टि की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है----

राम् को बहुत भूख लगी है, क्योंकि उसने सुबह के नाश्ते में कुछ भी नहीं खाया था। वह दोपहर 1:00 बजे तक बेचैन हो गया और सड़क पर कुछ जलपान अथवा होटल में खाना ढूँढने निकल गया। उसे 2 किमी चलने के पश्चात् एक होटल मिला जहाँ उसे केवल ₹ 10 में रोटी व दाल खाने को मिली, क्योंकि उसके पास केवल ₹ 15 ही थे, उसने ₹ 10 देकर खाना खाया। वहीं खाना खाने के बाद उसमें ऊर्जा वापस आ गई। व्यक्ति की एक असंतुष्ट आवश्यकता तनाव को जन्म देती है, जो उसमें संवेग को उत्पन्न करता है। यह संवेग ही खोजने का व्यवहार अथवा प्रकृति को सृजित करती है, जिससे उस आवश्यकता की पूर्ति हो जाए। यदि व्यक्ति की उस आवश्यकता की संतुष्टि हो जाती है, तो वह तनाव मुक्त हो जाता है।

अभिप्रेरणा का महत्त्व

अभिप्रेरणा को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि यह संस्था में लोगों की जरू तों की पहचान करने तथा उन्हें संतुष्ट करने में सहायता प्रदान करती है, जिस कारण उन्हें अपने संतुष्ट कार्य-निष्पादन को सुधारने का अवसर प्राप्त होता है। यही कारण है कि सभी प्रमुख संगठनों द्वारा विविध प्रकार के अभिप्रेरणात्मक कार्यक्रमों का विकास किया जाता है तथा उन कार्यक्रमों पर करोड़ों रुपये व्यय किए जाते हैं। इसका कारण यह है कि मानव संसाधन अन्य संसाधनों की अपेक्षा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तथा अभिप्रेरणा सांगठनिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मानवीय योग्यताओं के प्रभावपूर्ण प्रयोग में सहायक सिद्ध होती है। इस कारण ही अभिप्रेरणा को एक महत्त्वपूर्ण क्रिया माना जाता है। अभिप्रेरणा के महत्त्व को नीचे दिए गए लाभों के माध्यम से भी समझ सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं----

(क) अभिप्रेरणा कर्मचारियों के निष्पादन स्तर के सुधार के साथ ही संगठन के सफल निष्पादन में भी सहायता करती है, क्योंकि उपयुक्त अभिप्रेरणा ही कर्मचारियों की आवश्यकताओं की संतुष्टि करती है

और उनके द्वारा अपनी सारी ऊर्जा को अपने कार्य-निष्पादन पर केंद्रित करती है। एक संतुष्ट कर्मचारी सदैव एक वांछित निष्पादन करने में निपुण होता है। संगठन के अंतर्गत प्रभावी अभिप्रेरणा उच्च स्तर के निष्पादन की प्राप्ति में सहायक होती है, क्योंकि अभिप्रेरित कर्मचारियों द्वारा सांगठनिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपने प्रयत्नों का अधिकतम योगदान दिया जाता है।

(ख) अभिप्रेरणा कर्मचारियों के नकारात्मक अथवा उनके तटस्थ/निष्क्रिय अभिवृत्ति (दृष्टिकोण) को सांगठनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनके सकारात्मक रूपांतरण में सहायता करती है। उदाहरण के लिए—यदि एक श्रमिक को उचित पारिश्रमिक/प्रतिफल नहीं प्राप्त हुआ है, तो वह अपने कार्य के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। यदि उसे उचित प्रतिफल दिए जाएँ और पर्यवेक्षक उसे सकारात्मक प्रोत्साहन तथा उनके अच्छे कार्य हेतु उनकी प्रशंसा करें, तो कर्मचारी द्वारा धीरे-धीरे अपने कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।

(ग) अभिप्रेरणा द्वारा कर्मचारियों की संस्था को छोड़कर जाने की दर को कम किया जाता है तथा इसके नई नियुक्ति व प्रशिक्षण लागत में भी बचत होती है। कर्मचारियों द्वारा संस्था छोड़कर जाने की उच्च दर का प्रमुख कारण 'अभिप्रेरणा का अभाव है। यदि प्रबंधक द्वारा कर्मचारियों की अभिप्रेरणात्मक आवश्यकताओं की पहचान करके उन्हें प्रोत्साहन दिया जाए, तो कर्मचारी संस्था को छोड़ने की बात साप हा नहीं सकते। कर्मचारियों को संस्था छोड़कर जाने की उच्च दर प्रबंध को बाध्य करती और नई भता व उनका प्रशिक्षण करें जिसमें समय, निवेश तथा प्रयत्न शामिल हैं। अभिप्रेरणा इन सभी लागता को बचाने तथा प्रतिभावान लोगों को संस्था में टिके रहने में भी सहायता प्रदान करती है।

(घ) आभप्रेरणा संगठन की अनुपस्थिति को कम करने में भी सहायता करती है। अनुपस्थिति के कुछ महत्त्वपूर्ण कारण अपर्याप्त पारिश्रमिक/प्रतिफल, अनुपयुक्त/बुरी कार्य-स्थितियाँ, पहचान/प्रतिष्ठा का अभाव, सहकर्मी तथा पर्यवेक्षकों के साथ बुरे संबंध इत्यादि हैं। इन सभी कमियों को विश्वस्त/उपयरन अभिप्रेरणात्मक व्यवस्था के द्वारा दूर किया जा सकता है। यदि पर्याप्त अभिप्रेरणा प्रदान की जाए तो कार्य एक आनंदित स्रोत बन जाता है और श्रमिक अपने कार्य पर नियमित रूप से आना शुरू कर देते हैं।

प्रश्न 18. वित्तीय तथा गैर-वित्तीय प्रोत्साहन से आप क्या समझते हैं? वित्तीय तथा गैर-वित्तीय प्रोत्साहन में किन तत्त्वों को शामिल किया जाता है? समझाइए।

अथवा

किसी कम्पनी के कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए उपयोग किए जाने वाले विभिन्न वित्तीय और गैर-वित्तीय प्रोत्साहनों की व्याख्या करें। [NCERT]

उत्तर--- वित्तीय तथा गैर-वित्तीय प्रोत्साहन

प्रोत्साहन से आशय उन सभी उपायों से है जिनका उपयोग व्यक्तियों को प्रोत्साहन देने के लिए किया जाता है, जिससे उनके कार्य-निष्पादन में सुधार हो सके। इन प्रोत्साहनों को दो विस्तृत वर्गों में विभाजित किया जाता है-वित्तीय तथा गैर-वित्तीय।

वित्तीय प्रोत्साहन

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के संदर्भ में रुपया एक माध्यम बन गया है, जो दिन-प्रतिदिन की भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करता है तथा इसके साथ ही यह सामाजिक प्रतिष्ठा व सत्ता-प्राप्ति का भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसका कारण यह है कि रुपये में क्रय-क्षमता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रोत्साहन बन गया है। वित्तीय प्रोत्साहन वे प्रोत्साहन हैं, जो प्रत्यक्षत: वित्त के रूप में हैं अथवा जिन्हें वित्त के रूप में मापा जा सकता है तथा ये कर्मचारियों के अच्छे निष्पादन हेतु एक उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। व्यक्तिगत अथवा समूह के आधार पर इन प्रोत्साहनों को दिया जा सकता है। सामान्य तौर पर जिन वित्तीय प्रोत्साहनों को संगठन में प्रयोग किया जाता है, उनका विवरण नीचे किया गया है

(क) वेतन तथा भत्ता---- वेतन प्रत्येक कर्मचारी के लिए एक आधारिक वित्तीय प्रोत्साहन है जिसमें आधारभूत वेतन, महँगाई भत्ता व अन्य भत्ते सम्मिलित हैं। वेतन व्यवस्था में प्रतिवर्ष की वेतन वृद्धि तथा समय-समय पर भत्तों में वृद्धि शामिल हैं। कुछ व्यावसायिक संगठनों में वेतन वृद्धि और वार्षिक वेतन वृद्धि निष्पादन स्तर से भी संबद्ध हो सकती है।

(ख) उत्पादकता संबधित पारिश्रमिक/मजदूरी प्रोत्साहन-बहत-सी पारिश्रमिक प्रोत्साहन योजनाओं का उद्देश्य पारिश्रमिक भुगतान को उनकी व्यक्तिगत सामूहिक स्तर की उत्पादकता के साथ जोड़कर उनकी उत्पाकदता में बढ़ोतरी करना है।

(ग) बोनस/अधिलाभांश-बोनस वह प्रोत्साहन है, जो कर्मचारियों को उनके वेतन/मजदूरी के ऊपर अथवा अतिरिक्त रूप में दिया जाता है।

(घ) लाभ में भागीदारी-इससे तात्पर्य कर्मचारियों को संगठन के लाभ में उनका भाग देना है। इसके द्वारा कर्मचारियों को अपना निष्पादन सुधारने की प्रेरणा दी जाती है, जिससे वे लाभ को बढ़ाने में अपना अत्यधिक योगदान कर सकें।

(ङ) सह-साझेदारी/स्कंध (स्टॉक) विकल्प---- इन प्रोत्साहन योजनाओं के माध्यम से कर्मचारियों को एक निर्धारित कीमत पर कंपनी के शेयर प्रदान किए जाते हैं, जो मार्केट की कीमत से कम होते हैं। कुछ स्थितियों में प्रबंध द्वारा उन्हें विभिन्न प्रोत्साहन (जो उन्हें नकद दिए जाने हैं) के स्थान पर शेयर भी आवंटित किए जा सकते हैं। कर्मचारियों में शेयर का आवंटन एक स्वामित्व की भावना को जागृत करके उन्हें प्रेरित करता है कि वे अपना योगदान संगठन के विकास में अधिकतम करता है। इन्फोसिस कंपनी में प्रबंधकीय मुआवजे के एक भाग के रूप में स्कंध विकल्प योजना को कार्यान्वित किया गया है।

(च) सेवानिवृत्ति लाभ--- कर्मचारियों को बहुत-से सेवानिवृत्ति लाभ; जैसे- भविष्य निधि, पेंशन (निवृत्तिका) तथा ग्रेच्युटी (आनुतोषिक) इत्यादि वित्तीय सुरक्षा प्रदान करते हैं। यह उस समय भी एक प्रोत्साहन का कार्य करते हैं, जिस समय वह संस्था में कार्यरत अथवा सेवा में होते हैं।

(छ) अनुलाभ/परक्विजट---- बहुत-सी कंपनियों द्वारा फ्रिंज लाभ तथा अनुलाभ दिए जाते हैं; जैसे-घर की सुविधा, कार भत्ता, बच्चों के लिए सहायता तथा चिकित्सा सहायता इत्यादि। ये वेतन के अतिरिक्त लाभ/भत्ते हैं। इन उपायों द्वारा प्रबंधकों/कर्मचारियों दोनों को ही अभिप्रेरित किया जाता है।

गैर-वित्तीय प्रोत्साहन

व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं की संतुष्टि केवल रुपये से ही नहीं होती, अपितु सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा संवेगी कारकों द्वारा भी प्रोत्साहन देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है। इन आवश्यकताओं पर ही गैर-वित्तीय प्रोत्साहन केंद्रित है। कभी-कभी गैर-वित्तीय प्रोत्साहन में वित्त भी शामिल होते हैं। यद्यपि, इसका बल मनोवैज्ञानिक व भावात्मक संतुष्टि देने पर है न कि रुपये/पैसे से होने वाली संतुष्टि पर। उदाहरण के लिए-यदि संस्था में किसी व्यक्ति की पदोन्नति होती है तो यह उसे मनोवैज्ञानिक तौर पर संतुष्टि देती है क्योंकि उस व्यक्ति को अपने उत्कृष्ट होने की अनुभूति होती है, उसके पद व प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी होती है और पद में नई चुनौतियाँ होती हैं इत्यादि। हालाँकि पदोन्नति में अतिरिक्त वेतन शामिल होता, लेकिन वित्तीय पक्ष गैर-वित्तीय पक्षों से भारी नहीं पड़ते हैं। नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण गैर-वित्तीय प्रोत्साहनों के बारे में बताया गया है, जो इस प्रकार हैं-

(क) पद प्रतिष्ठा/ओहदा---- यदि सांगठनिक संदर्भ में देखें तो पद से तात्पर्य संस्था में पदों के क्रम से है। किसी व्यक्ति के प्रबंधकीय पद पर होने के परिचायक हैं-सत्ता, प्रतिफल, उत्तरदायित्व, पहचान, पद प्रतिष्ठा, लाभ इत्यादि। सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा मान-सम्मान/प्रतिष्ठा से संबंधित आवश्यकताएँ व्यक्ति के पद को दी गई सत्ता व प्रतिष्ठा द्वारा पूर्ण हो जाती हैं।

(ख) सांगठनिक वातावरण----- यह वातावरण वह है जो किसी भी संस्था का विवरण देता है और एक संस्था को दूसरी संस्था से भिन्न करता है। संस्था में कर्मचारियों के व्यवहार को यही विशेषताएँ प्रभावित करती हैं। इनमें से कुछ विशेषताएँ पारिश्रमिक अभिविन्यास, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, कर्मचारियों

का ध्यान रखना तथा जोखिम उठाना इत्यादि हैं। यदि प्रबंधक द्वारा इन सभी पहलुओं पर सकारात्मक उपाय/कदम उठाया जाता है तो यह बेहतर सांगठनिक वातावरण के विकास/निर्माण में सहायता प्रदान करती हैं।

(ग) जीवनवृत्ति विकास के सुअवसर----संस्था में उच्च स्तर तक पहुँचना प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। यह सुअवसर प्रबंधकों द्वारा कर्मचारियों को दिए जाने चाहिए कि वे अपने कौशलों में सुधार कर सकें तथा उन्हें उच्च स्तर के पदों पर पदोन्नति अथवा नियुक्ति मिल सके। कर्मचारियों को पदोन्नति प्राप्त करने में उपयुक्त दक्षता-विकास कार्यक्रम तथा ठोस पदोन्नति नीति सहायता करती है। पदोन्नति द्वारा एक शक्तिवर्धक का कार्य किया जाता है तथा कर्मचारियों को अपने बेहतर निष्पादन को प्रदर्शित करने हेतु प्रोत्साहन दिया जाता है।

(घ) पद संवर्धन---- इसका संबंध उन कार्यों की रूपरेखा तैयार करना है जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कार्य-अंश शामिल हैं। पद संवर्धन उच्च स्तरीय ज्ञान तथा कौशल की आवश्यकता है जो कर्मचारियों का उत्तरदायित्व सौंपती है तथा अधिक स्वायत्तता देती है; एक अर्थ-पूर्ण कार्यानुभव देती है तथा व्यक्तिगत विकास के सुअवसर प्रदान करती है। यदि कार्य का संवर्धन करके उन्हें रुचिपूर्ण बनाया जाए, तो कार्य अपने आप में ही व्यक्ति हेतु अभिप्रेरणा का स्रोत बन जाएगा।

(ङ) कर्मचारियों को पहचान/मान-सम्मान देने संबंधित कार्यक्रम-अधिकतर व्यक्तियों की यह इच्छा होती है कि उनके कार्य का मल्यांकन हो और उन्हें उपयुक्त पहचान मिल सके। उनके द्वारा ऐसा अनुभव किया जाता है कि उनसे सम्बद्ध अन्य लोगों द्वारा उन्हें स्वीकृति मिले। पहचान से तात्पर्य जी कार्य की पहचान करना व उनकी सराहना करना है। कर्मचारियों की उनके कार्य-निष्पादन हेत की इस प्रकार की प्रशंसा की जाती है, तो वह उच्च स्तरीय कार्य करने हेतु प्रोत्साहित होते हैं।

(च) पद-सुरक्षा/स्थायित्व-कर्मचारियों की इच्छा होती है कि उनका पद सुरक्षित रहे। उन्हें और भावष्य की आय व कार्य हेतु निश्चित स्थायित्व/स्थिरता चाहिए जिससे उन्हें इन पक्षों पर चिंता न हो। तथा अपना कार्य बहुत उत्साहपूर्वक कर सकें। हमारे देश में (अपर्याप्त कार्य अवसरों को देखते हा) यह पक्ष अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अवसर कम हैं और उन्हें प्राप्त करने के इच्छुक अधिक यद्यपि, पद-सुरक्षा का एक नकारात्मक पक्ष भी है। जब लोगों को यह अनुभव होता है कि उनकी नौकरी छूटने वाली नहीं है तो वे निष्क्रिय हो जाते हैं।

(छ) कर्मचारियों की भागीदारी-इससे तात्पर्य कर्मचारियों से सम्बंधित निर्णय लेने में उन्हें सम्मिलित करना है। इस प्रकार के कार्यक्रम बहुत-सी कंपनियों-संयुक्त प्रबंध समिति, जलपानगृह समिति कार्यसमिति इत्यादि के रूप में कार्यान्वित हैं।

(ज) कर्मचारियों का सशक्तीकरण-सशक्तीकरण से आशय अधीनस्थों को अधिक सत्ता व स्वायत्तता देना है। सशक्तीकरण लोगों को यह अनुभव दिलाता है कि उनका कार्य महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार की

भावना द्वारा कार्य-निष्पादन में कौशल व प्रतिभा का उपयोग करने में सकारात्मक तौर पर योगदान दिया जाता है।

प्रश्न 19. एक अच्छे नेतृत्वकर्ता के गुणों की व्याख्या करें? क्या महज गुण नेतृत्व की सफलता सुनिश्चित करते हैं?

[NCERT]

अथवा

"नेतृत्व को प्रबन्ध के निर्देशन कार्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर- नेतृत्व का महत्त्व-नेतृत्व को प्रबन्ध के निर्देशन कार्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-'नेतृत्व' किसी संगठन की सफलता में एक प्रमुख कारक है। इतिहास जानकारी देता है कि अक्सर, संगठन की सफलता व असफलता के मध्य का अंतर नेतृत्व होता है। एक प्रसिद्ध प्रबंध परामर्शक स्टीफन कोरी द्वारा बहुत ही उपयुक्त उल्लेख किया गया है कि प्रबंधक महत्त्वपूर्ण है, लेकिन नेता संगठन की निरंतर सफलता हेतु अनिवार्य है। एक नेता द्वारा न केवल अपने अनयायियों के सांगठनिक उद्देश्यों हेतु प्रतिबद्ध किया जाता है अपितु उनके लिए जरूरी संसाधन भी एकत्र करता है, उनका मार्गदर्शन करता है तथा अपने अधीनस्थों को लक्ष्यों की प्राप्ति हेत उत्प्रेरित भी करता है। नेतृत्व के महत्त्व को संस्था को होने वाले निम्नांकित लाभों द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है---

(क) नेतत्व द्वारा व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित किया जाता है तथा उन्हें अपनी ऊर्जा/ श्रम का सकारात्मक रूप से संस्था के लाभ के लिए योगदान देने हेतु प्रेरित किया जाता है। अच्छे नेता सदेव अपने अनुयायियों द्वारा अच्छे ही परिणामों को उत्पादित करते हैं।

(ख) कर्मियों के साथ एक नेता व्यक्तिगत संबंध बनाए रखता है तथा अपने अनुयायियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहायता करता है। वह कर्मियों को सहायता/सर्मथन देता है, आवश्यक आत्मविश्वास प्रदान करता है तथा एक अनुकूल कार्य-वातावरण को सृजित करता है।

(ग) संस्था के अन्तर्गत आवश्यक परिवर्तन को शुरू करने में नेता एक प्रमख भमिका निभाता है। वह उन्ह

विश्वास दिलाता है, स्पष्ट करता है तथा हृदयपूर्वक परिवर्तन को स्वीकार करने हेतु प्रेरित करता है। इस प्रकार वह परिवर्तन के विरोध की समस्या का समाधान करता है तथा बहत ही कम असंतोष का भावना के साथ उसे लागू भी करता है।

(घ) एक नेता द्वारा द्वंद्व को भी प्रभावपर्ण तरीके से निपटाया जाता है तथा उसके दुष्परिणामों को (जो द्वंद्व से उत्पन्न हो सकते हैं) फैलने से रोका जाता है। एक अच्छे नेता द्वारा सदैव अपने अनुयायियों को अपनी भावनाओं व असहमति को प्रकट करने की अनुमति दी जाती है, लेकिन वह उन्हें उपयुक्त स्पष्टीकरण

द्वारा आश्वस्त भी करता है।

(ङ) नेता द्वारा अपने अधीनस्थों के लिए प्रशिक्षण भी उपलब्ध करवाया जाता है। एक अच्छा नेता सदैव

अपना आगामी नेतृत्व प्रतिनिधि तैयार करता है, जिससे नेतृत्व को उत्तरदायित्व प्रक्रिया बगैर किसी बाधा के सम्पन्न हो सके।

अच्छे नेता के गुण

ऐसे कौन-से गुण हैं, जो एक अच्छे नेता में होने चाहिए? क्या ऐसी कुछ सामान्य विशेषताएँ अथवा गुण हैं, जो सभी अच्छे नेता में समान रूप से पाए जाते हैं? ऐसी कितनी विशेषताएँगुण इस प्रकार की हैं, जो एक नेता के सफल होने के लिए उनमें होनी आवश्यक हैं? नेतत्व के एक उपागम द्वारा इस बात पर बल दिया जाता है कि एक व्यक्ति में कुछ निश्चित विशेषताएं अथवा गुण होने चाहिए, जिससे वह एक सफल नेता बन सकता है। **शोधकर्ताओं/अन्वेषकों द्वारा एक अच्छे नेता के गुण**

कुल मिलाकर इस प्रकार की 18000 विशेषताएँ हैं, जिनकी पहचान शोधकर्ताओं/अन्वेषकों द्वारा की गई हैं। अच्छे नेता के गुण (इस विषय पर जिन्हें महारत प्राप्त है, उनके द्वारा बताए गए हैं) निम्नलिखित हैं साहस, इच्छा-शक्ति, निर्णय, लचीलापन, ज्ञान तथा सत्यनिष्ठा/अखंडता अथवा ईमानदारी। ------विकाउट स्लिम

पर्यवेक्षण योग्यता, उपलब्धि अभिप्रेरणा, आत्म-संतुष्टि, बुद्धिमत्ता, आत्म-विश्वास, निर्णय लेने की क्षमता।

-----घीसैली

साहस, आत्म-विश्वास, नैतिक गुण, निज-त्याग, पैतृकवाद, न्यायसंगत/निष्पक्षा --हिल

शारीरिक/भौतिक तथा निर्धारक कारक, बुद्धिमत्ता, आत्म-विश्वास, सामाजिकता, इच्छाशक्ति तथा प्रभुत्व। -स्टोगिल यह इस संकल्पना पर आधारित होता है कि एक नेता कुछ विशेष गुणों के कारण (जो उनमें होते हैं) गैर-नेता से भिन्न है। अच्छे नेता की विशेषताएँ (जो कुछ शोधकर्ताओं/अन्वेषकों द्वारा दी गई हैं) ऊपर दी गई हैं। इनमें से कुछ गुणों का विवरण निम्नलिखित है---

(क) शारीरिक विशेषताएँ---- इन विशेषताओं; जैसे-स्वास्थ्य, कद, वजन, रंग-रूप/उपस्थिति द्वारा किसी व्यक्ति के शारीरिक व्यक्तित्व का निर्धारण किया जाता है। प्रायः ऐसा समझा जाता है कि लोगों को अच्छी शारीरिक विशेषताएँ आकर्षित करती हैं। एक नेता को मेहनतपूर्वक कार्य करने में स्वास्थ्य तथा सहनशीलता सहायता प्रदान करती है, जो दूसरों को उसी लगन व उत्साह से कार्य करने हेतु उत्प्रेरित करती है।

(ख) ज्ञान--- एक अच्छे नेता में जरूरी ज्ञान व कौशल अवश्य ही होने चाहिए। केवल इस प्रकार के व्यक्ति

ही अपने अधीनस्थों को ठीक रूप से आदेश तथा प्रभावित कर सकते हैं।

(ग) सत्यनिष्ठा/ईमानदारी---- एक अच्छे नेता में उच्च स्तरीय सत्यनिष्ठा व ईमानदारी होना अति आवश्यक है। एक नेता दूसरे के लिए आदर्श होना चाहिए, जिन मूल्यों व नैतिकता का वह प्रचारक है।

(घ) पहल---- एक अच्छे नेता में पहल-शक्ति/नेतृत्व तथा साहस भी अवश्य होना चाहिए। उसे यह प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि उसे कब सुअवसर मिले, अपितु उसे सुअवसर पर अधिकार करके संस्था के लाभ हेतु प्रयोग करना चाहिए।

(ङ) सप्रेषण कौशल---- एक अच्छे नेता को अच्छा संप्रेषक भी होना चाहिए तथा उसमें अपने विचारों को

स्पष्ट रूप से समझाने की योग्यता होनी चाहिए, जिससे लोग उसके विचारों को समझ सकें। नेता को कवल एक अच्छा वक्ता ही नहीं होना चाहिए, अपितु एक अच्छा शिक्षक, श्रोता, परामर्शक व विश्वसनीय भी होना चाहिए जिससे वह सभी से कार्य करा सके।

(च) आभभरणा कौशल--- एक नेता को एक प्रभावशाली अभिप्रेरक होना चाहिए। उसे जो आवश्यकताओं को समझकर उनकी आवश्यकताओं की संतुष्टि द्वारा उन्हें प्रेरित भी करना चाहि

(छ) आत्म-विश्वास----- एक नेता में उच्च स्तरीय आत्म-विश्वास होना चाहिए तथा उसे अत्यधिक की समय में भी अपना विश्वास खोना नहीं चाहिए। सत्य ही यदि नेता में आत्म-विश्वास की कमी के वह अधीनस्थों में भी विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकता।

(ज) निणय लेने की क्षमता---- नेता का कार्य के प्रबंधन में निर्णायक होना अति आवश्यक है। किसा तथ्य के विषय में संतुष्ट हो जाता है अथवा उसे सही लगता है, तो उसे अपनी बात दृढ़संकल्पित होना चाहिए तथा अपने विचारों को बार-बार नहीं बदलना चाहिए।

(झ) सामाजिक कौशल---- एक नेता को सदैव अपने सहकर्मियों व अनुयायियों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखना चाहिए तथा मिल-जुलकर रहना चाहिए। उसे व्यक्तियों के साथ अच्छे मानवीय संबंध बनाकर रखने चाहिए तथा उन्हें समझना चाहिए।

यद्यपि, आपको यह भली-भाँति याद रखना चाहिए कि यह जरूरी नहीं कि सभी अच्छे नेताओं में अच्छे नेता होने के सभी गुण विद्यमान हों। वास्तव में, किसी भी व्यक्ति हेतु यह संभव भी नहीं है लेकिन इन सभी गणो के विषय में जानकारी व समझ होना प्रबंधकों की सहायता करती है कि वे इन्हें प्रशिक्षण तथा चैतन्य प्रयत्नो द्वारा अर्जित करके स्वयं को एक अच्छा नेता बनाएँ।

प्रश्न 20. संप्रेषण का अर्थ बताइए। प्रबन्ध के लिए संप्रेषण किस प्रकार महत्वपूर्ण है?

उत्तर---- संप्रेषण

संप्रेषण द्वारा किसी प्रबंधक की सफलता में मुख्य भूमिका निभाई जाती है। प्रबंधक के पास कितनी बुद्धिमत्ता व व्यावसायिक ज्ञान है, इसका कोई महत्त्व नहीं यदि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ प्रभावी संप्रेषण करने में असमर्थ है तथा उनमें पारस्परिक समझ न विकसित कर सके। प्रबंधक की निर्देशन सम्बन्धी योग्यताएँ मुख्यत: उसके संप्रेषण कौशल पर ही निर्भर होती हैं। यही कारण है कि संगठन सदैव प्रबंधक व कर्मचारियों के ही संप्रेषण कौशल के सुधार पर बल देता है। 'संप्रेषण' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'कम्यूनिस' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ 'समान (कॉमन)' अथवा समान प्रकार की समझ बनाने से है। संप्रेषण को भिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। सामान्यतया संप्रेषण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में लिया जाता है जिसके द्वारा विचार, भाव, अनुभव, तथ्य इत्यादि का आदान-प्रदान होता है तथा जिसका उद्देश्य दो व्यक्तियों के मध्य आपसी समझ को पैदा करना है।

संप्रेषण की परिभाषाएँ

"संप्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं ताकि वे (एक-जैसी समझ बना सकें) पारस्परिक समझ बना सकें।" -रौजरस

“संप्रेषण से अभिप्राय उन सभी क्रियाओं से है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी बात समझाने के लिए करता है। इसमें एक व्यवस्थित तथा निरंतर चलने वाली कहने, सुनने तथा समझने की प्रक्रिया सम्मिलित है।

-----लूयिस ऐलन

"संप्रेषण सूचनाओं का प्रेषक के द्वारा प्राप्तकर्ता को स्थानांतरण है ताकि वह उन सूचनाओं को उसी रूप में

समझ सके।" ------हैरोल्ड कूट्स एवं हैनिज वैहरिक

संप्रेषण का महत्व

'संप्रेषण' प्रबंधकीय क्रियाओं के सबसे प्रमुख/केन्द्रीय पक्षों में से एक है। यह ऐसा अनुमान है जिसमें एक प्रबंधक द्वारा अपना 90% समय संप्रेषित करने; जैसे-पढ़ने, लिखने, मार्गदर्शन करने. सनने, अनुमादा आदेश देने, डाँटने इत्यादि में लगाया जाता है। प्रबंधक की कुशलता महत्त्वपर्ण रूप से उसके संप्रेषित करन की योग्यता पर निर्भर करती है कि वह अपने अधिकारियों के साथ किस कशलता से संचार करता है, अपने अधीनस्थों व बाह्य एजेंसियों; जैसे-बैंकर, प्रदायक/संभरक, सरकार व यनियन इत्यादि के साथ किस प्रकार संप्रेषण करता है। अमेरिकन प्रबंध समिति के एक पूर्व सभापति द्वारा एक बार यह अवलोकित किया गया कि प्रबंधक की पहले स्थान की समस्या वर्तमान में संप्रेषण है। वहीं बरनार्ड द्वारा इसे सभी सामहिक क्रियाओं को आधार माना गया। प्रबंधकीय प्रक्रिया हेतु संप्रेषण एक चिकने पदार्थ के रूप में कार्य करता है, जो निर्विघ्न बनाता है। प्रबंध में सम्प्रेषण के महत्त्व को निम्नलिखित आधार पर आंकलित किया जा सकता है–

(क) समन्वयन के आधार के रूप में कार्य करता है-संप्रेषण द्वारा समन्वयन के आधार के रूप में कार्य किया जाता है जो विभिन्न क्रियाओं, विभागों तथा संस्था में कार्यरत व्यक्तियों के बीच समन्वयन प्रदान करता है। इस प्रकार के समन्वयन को सांगठनिक उद्देश्यों के विवरण (इसे कैसे प्राप्त करना है) तथा भिन्न व्यक्तियों के बीच पारस्परिक संबंधों द्वारा कार्यान्वित/प्रदान किया जाता है।

(ख) उद्यम के निर्विन चलने में सहायता करता है---- संप्रेषण द्वारा उद्यम के निर्विघ्न तथा बगैर किसी अवरोध के चलने में सहायता की जाती है। संप्रेषण पर ही सभी सांगठनिक अन्त:क्रियाएँ निर्भर करती हैं। संस्था में प्रबंधक का कार्य मानवीय व भौतिक तत्त्वों के समन्वयन का है तथा इन्हें क्रियात्मक व कुशल इकाई बनाने में है, जो सामान्य उद्देश्यों को पूर्ण करेगा। यह केवल संप्रेषण ही है, जो संस्था में बगैर किसी अवरोध के कार्य करने में एक महत्त्वपूर्ण कारक है। संगठन के अस्तित्व

में संप्रेषण उसके शुरू होने से लेकर उसके निरंतर कार्यकाल तक एक आधारभूत तत्व है। जब संप्रेषण रुकता है, तो संस्था की सभी क्रियाएँ भी कार्य करना बंद कर देती हैं।

(ग) निर्णय लेने की क्षमता के आधार के रूप में कार्य करता है-- संप्रेषण निर्णय लेने में जरूरी सूचनाओं को उपलब्ध कराता है। प्रबंधक के लिए इसकी अनुपस्थिति में किसी भी प्रकार के अर्थपूर्ण निर्णय लेने में कठिनाई हो सकती है अथवा निर्णय लेना असंभव होता है। केवल प्रासंगिक सूचना के संप्रेषण के आधार पर ही किसी प्रकार का सही निर्णय ले सकता है।

(घ) प्रबंधकीय कुशलता को बढ़ाता है–- तीव्र तथा प्रबंधकीय कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु संप्रेषण अत्यधिक आवश्यक है। प्रबंध उद्देश्यों व लक्ष्यों को संप्रेषित करता है, आदेश देता है, कार्य व उत्तरदायित्व सौंपता/आवंटित करता है तथा अधीनस्थों के निष्पादन का निरीक्षण करता है, अत: संप्रेषण इन सभी पहलुओं में शामिल है। इस प्रकार संपूर्ण संस्था में संप्रेषण लचीलापन लाता है तथा संस्था की कार्यकुशलता को भी बनाए रखता है।

(ङ) सहयोग तथा औद्योगिक शांति को बढ़ाता है--- सभी विवेकशील प्रबंध का लक्ष्य कार्यकुशलता है; जो तभी संभव हो सकता है जब फैक्टरी में औद्योगिक शांति हो तथा प्रबंध व कर्मचारियों के बीच आपसी सहयोग हो। यह संप्रेषण दोनों दिशाओं में प्रबंध व कर्मचारियों के मध्य सहयोग आपसी समझ को बढ़ाता है।

(च) प्रभावी नेतृत्व को स्थापित करता है--- 'संप्रेषण' नेतृत्व का आधार है तथा प्रभावी संप्रेषण अधीनस्थों को प्रभावित करने में भी सहायक है। नेता में व्यक्तियों को प्रभावित करते समय अच्छे संप्रेषण कौशल का होना अति आवश्यक है।

(छ) मनोवृत्ति बढ़ाता है तथा अभिप्रेरित करता है---- प्रबंध को संप्रेषण की प्रभावशाली व्यवस्था समर्थ बनाती है, जिससे वे अपने अधीनस्थों को प्रेरित व संतुष्ट कर सकें। अच्छे संप्रेषण द्वारा कर्मचारियों को कार्य के शारीरिक व सामाजिक पहलुओं में समझौता अथवा व्यवस्थित करने में सहायता प्रदान की जाती है। संप्रेषण उद्योग के अंतर्गत मानवीय संबंधों में सुधार लाता है। प्रबंध की भागीदारी/समझदारी व प्रजातांत्रिक प्रतिरूप का आधार 'संप्रेषण' ही है, जो कर्मचारियों तथा प्रबंधकों की मनोवृत्ति की बढ़ोतरी में सहायक है।

प्रश्न 21. प्रभावी संचार के लिए आम बाधाएँ क्या हैं? उन्हें दूर करने के उपायों का सुझाव दें। [NCERT]

अथवा

प्रभावी संप्रेषण की बाधाओं का वर्णन कीजिए तथा इनको दूर करने के लिए किए जाने वाले सुधारों की भी विवेचना कीजिए।

उत्तर--- प्रभावी संप्रेषण में बाधाएँ

प्रायः ऐसा देखा गया है कि प्रबंधकों को संप्रेषण तंत्र के टूटने अथवा बाधाओं के कारण बहुत सी कठीनाइयों का सामना करना पडता है। प्रभावी संप्रेषण को ये बाधाएँ रोकती हैं अथवा कुछ सचनाओ को आवरित या छान देती हैं, जिससे अधिकारियों तक सूचना का कुछ भाग पहुँच नहीं पाता अथवा कुछ गलत अर्थ भी निकाले जा सकते हैं जिसके कारण गलतफहमी उत्पन्न हो सकती है इसलिए, एक प्रबंधक के लिए यह आवश्यक है कि वह इन बाधाओं की पहचान करके इन्हें दूर करने का उपाय करे। संगठन के अंतर्गत प्रभावी संप्रेषण की इन बाधाओं को विस्तृत रूप से इस प्रकार बाँटा जा सकता के संकेतीय बाधाएँ, मनोवैज्ञानिक बाधाएँ, सांगठनिक बाधाएँ तथा व्यक्तिगत बाधाएँ। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है

1.सांकेतिक/संकेतीय बाधाएँ

'संकेत' किसी भाषा की वह शाखा है, जिसका शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ से संबंध होता है। वहीं संकेतीय बाधाएँ उन बाधाओं तथा समस्याओं से संबंधित हैं, जो संदेश की एनकोडिंग व डिकोडिंग करने की प्रक्रिया में उन्हें शब्दों या संकतों में परिवर्तित करते समय उत्पन्न होती हैं। साधारणतया इस प्रकार की बाधाएँ गलत शब्दों के प्रयोग, भिन्न अर्थ निकालने, त्रुटिपूर्ण रूपांतरण इत्यादि के कारण पैदा होती हैं। इनकी चर्चा निम्नलिखित है–

(क) संदेश की अनुपयुक्त अभिव्यक्ति--- बहुत-सी बार प्रबंधक अपने अधीनस्थों को निर्दिष्ट अर्थ समझा नहीं पाता अथवा संप्रेषित कर पाता है। संदेश की यह अनुपयुक्त अभिव्यक्ति गलत शब्द के प्रयोग, अपर्याप्त शब्द भण्डारण, आवश्यक शब्दों का प्रयोग न करने इत्यादि के कारण हो सकती है।

(ख) विभिन्न अर्थों सहित संकेतक---- प्रायः एक शब्द के बहुत सारे अर्थ भी हो सकते हैं। एक प्राप्तकर्ता को शब्द के उसी अर्थ को समझना है, जो प्रेषक उसे समझाना चाहता है। उदाहरण के लिए नीचे प्रस्तुत तीन वाक्यों को ध्यानपूर्वक पढ़िए, जिनमें 'मूल्य' (Value) शब्द का उपयोग किया गया है–

1. कम्प्यूटर का कौशल सीखने का मूल्य/महत्त्व क्या है?

2. इस अंगूठी का मूल्य क्या है?

3. मैं हमारी दोस्ती का सम्मान करता हूँ या मूल्य समझता हूँ।

अत: आपने देखा कि 'मूल्य' शब्द भिन्न संदर्भो में पृथक् अर्थ दे रहा है। इसकी गलत समझ ही संप्रेषण समस्याओं को पैदा करती है।

(ग) त्रूटीपर्ण रूपांतर/अनुवाद---- संप्रेषण का मसौदा मूलत: कुछ स्थितियों में किसी एक भाषा में तैयार किया जाता है; जैसे-अंग्रेजी में। अतः इसे कर्मचारियों को समझाने के लिए इसका रूपांतर हिन्दी

भाषा में करना आवश्यक हो जाता है। यदि किसी कारणवश अनुवादक दोनों ही भाषाओं में निपुण नहीं हैं तो संप्रेषण को अन्य अर्थ देने के कारण अनुवाद में त्रुटियाँ हो सकती हैं।

(घ) अस्पष्ट संकल्पनाएँ--- प्रायः कुछ संप्रेषणों की विविध संकल्पनाएँ, भिन्न व्याख्याओं के कारण भी हा सकती हैं।

उदाहरण के लिए-एक अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ को निर्देश दिया गया है कि "मेरे अतिथि का ध्यान रखो"। यहाँ अधिकारी का तात्पर्य है कि अधीनस्थ को अतिथि के यातायात खान-पान, रहने की व्यवस्था इत्यादि का ध्यान रखना है जब तक वह स्थान से न चला जाए। वहीं अधीनस्थ की व्याख्या यह हो सकती है कि अतिथि को उचित होटल में ध्यानपूर्वक पहँचाना है। वास्तव में अधीनस्थ को इन अस्पष्ट कल्पनाओं या पूर्वधारणा के कारण हानि होती है।

(ड) तकनीकी विशिष्ट शब्दावली---- प्रायः ऐसा देखा गया है कि विशेषनों द्वारा उन व्यक्तियो समझाने में तकनीकी शब्दों का प्रयोग अधिक किया जाता है, जो उस संबंधित क्षेत्र के विशेषज्ञ विशेषज्ञ नही होते । इस कारण वे बहुत-से ऐसे शब्दों का वास्तविक अर्थ भी नहीं समझ पाते ।

॥. मनोवैज्ञानिक बाधाएँ

मनोवैज्ञानिक अथवा भावात्मक कारक संप्रेषकों की बाधाओं के रूप में कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए-एक चिंतित व्यक्ति सही तरीके से संप्रेषण करने में असमर्थ होता है तथा एक क्रोधी संदेश प्राप्तकर्ता संदेश का सही अर्थ नहीं समझ पाता। अत: प्रेषक व संदेश प्राप्तकर्ता की मन:स्थिति (मानसिक स्थिति) प्रभावी संप्रेषण में प्रदर्शित होती है। कुछ मनोवैज्ञानिक बाधाओं का विवरण निम्नलिखित है---

(क) असामयिक मूल्यांकन---- इसके पहले कि प्रेषक अपना संदेश पूर्ण करे, कुछ लोग (कुछ स्थितियों में) संदेश के अर्थ का मूल्यांकन पहले ही कर लेते हैं। अत: इस प्रकार का कालपूर्व मूल्यांकन पूर्वकल्पित धारणाओं अथवा पक्षपात (जो संप्रेषण के विरुद्ध होता है) के कारण हो सकता है।

(ख) सावधानी का अभाव/ध्यान न होना---- यदि संदेश प्राप्तकर्ता का मस्तिष्क कहीं ओर ध्यानमग्न हो, तो परिणामतया संदेश को ध्यान से न सुनना एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक बाधा के तौर पर कार्य करता है। उदाहरण के लिए-यदि कोई कर्मचारी अपनी समस्याओं के विषय में अपने अधिकारी को अवगत करा रहा है (जो अपनी किसी महत्त्वपूर्ण फाइल में ध्यानमग्न है) तो अधिकारी उसके संदेश को नहीं समझ पाता और कर्मचारी हतोत्साहित हो जाता है।

(ग) संप्रेषण के प्रसारण में लोप/क्षय तथा अपर्याप्त प्रतिधारण--- जब संप्रेषण विविध स्तरों से प्रसारित होता है, तो उत्तरोत्तर संदेश के प्रसारण का परिणाम संदेश के क्षय अथवा अशुद्ध सूचना के रूप में प्रतिफलित होता है। ऐसा अधिकांशत: मौखिक संप्रेषण में पाया जाता है। एक अन्य समस्या

'अकुशल प्रतिधारण क्षमता है। सामान्यतया जो व्यक्ति सूचना को अधिक समय तक प्रतिधारण नहीं कर सकते, वे या तो असावधान होते हैं या रुचि नहीं लेते हैं।

(घ) अविश्वास--- यह संप्रेषक व संदेश प्राप्तकर्ता के बीच एक बाधक के रूप में कार्य करता है। यदि दोनों ही के द्वारा एक-दूसरे पर विश्वास नहीं किया जाता, तो वे एक-दूसरे के संदेश को उसके मूल अर्थ में समझ नहीं पाएंगे। ।।।. सांगठनिक बाधाएँ

वे कारक जो सांगठनिक संरचना, नियम, अधिनियम तथा आधारिक संबंधों आदि से संबंधित हैं, कभी-कभी प्रभावी संप्रेषण के अन्तर्गत बाधाओं के रूप में कार्य करते हैं। उनमें से कुछ बाधाएँ निम्नलिखित हैं---

(क) सांगठनिक नीति-यदि सांगठनिक नीति अंतर्निहित अथवा सुव्यक्त तथा संप्रेषण के स्वतंत्र प्रवाह में सहायक नहीं होती, तो यह संप्रेषण की प्रभावशीलता में बाधा पहुँचाती है। उदाहरण के लिए किसी संस्था में (जिसकी रूपरेखा अत्यधिक केंद्रित है) व्यक्ति स्वतंत्र रूप से संप्रेषण हेतु उत्साहित नहीं होते।

(ख) नियम तथा अधिनियम-संप्रेषण में कठोर नियम तथा बोझिल प्रक्रियाएँ बाधक हो सकती हैं। उसी प्रकार संप्रेषण निर्दिष्ट माध्यमों से विलंब के रूप में परिलक्षित भी हो सकता है।

(ग) पदवी/पद-अधिकारी का पद/पदवी उसके और अधीनस्थों के बीच मनोवैज्ञानिक दूरी पैदा कर सकती है। अपने पद से प्रभावित प्रबंधक द्वारा अपने अधिनस्थों को अपनी भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति की अनुमति नहीं दी जाती।

(घ) संगठन की संरचना में जटिलता–किसी भी संस्था के अंतर्गत (जहाँ पर प्रबंधक स्तरों की संख्या अधिक है) संप्रेषण में देरी होती है तथा उसमें विकृति भी आ सकती है, क्योंकि सूचनाएँ विविध स्तरों से जितनी बार होकर गुजरती हैं उतना ही उनका क्षय होता है।

।V.व्यक्तिगत बाधाएँ

प्रेषक व संदेश प्राप्तकर्ता दोनों के व्यक्तिगत कारकों द्वारा भी प्रभावी संप्रेषण पर प्रभाव डाला जा सकता है।

आधकारी व अधीनस्थों की कछ व्यक्तिगत बाधाओं का उल्लेख अग्रलिखित हैं----

(क) सत्ता के सामने चुनौती का भय---- यदि किसी अधिकारी द्वारा यह अनुमान लगाया जाता है कि विशिष्ट सूचना/संप्रेषण उसकी सत्ता को विपरीत रूप से प्रभावित कर सकती हैं, तो वह उस संप्रेस पर प्रतिबंध लगा देता है या उसे रोक सकता है।

(ख) अधिकारी का अपने अधीनस्थों में विश्वास का अभाव-यदि किसी अधिकारी को पर अधानस्थों की कुशलता में विश्वास नहीं है या वह आश्वस्त नहीं है, तो वह उनके विचार तथा पर नहीं लेता।

(ग) संप्रेषण में अनिच्छा–कभी-कभी अधीनस्थ/कर्मचारी अपने अधिकारियों से संप्रेषण हेतु मानसिक तोर पर तेयार नहीं होते, यदि उन्हें ऐसा लगता है कि यह उनके हितों को विपरीत रूप से प्रभावित करेगी।

प्रभावी संप्रेषण के लिए सुधार

प्राय: सभी संगठनों के अंतर्गत प्रभावी संप्रेषण में बाधाएँ अधिक या कम अंश में उपस्थित रहती है। सस्थाओं को, जो प्रभावपूर्ण संप्रेषण के विकास हेतु उत्सुक होती हैं, इन बाधाओं को दूर करने के लिए उभिन उपाय तथा संप्रेषण में सुधार लाकर उसे प्रभावी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार के कुछ उपायो का वर्णन निम्नलिखित है-

(क) संप्रेषण करने से पहले विचार/लक्ष्य स्पष्ट करने चाहिए---- कोई समस्या अधीनस्थों को बताने से पूर्व अधिकारी की स्वयं ही सभी परिप्रेक्ष्यों से समस्या स्पष्ट होनी चाहिए। सम्पूर्ण समस्या का विश्लेषण होना चाहिए, अध्ययन गहराई से होना चाहिए तथा उसे इस प्रकार रखना चाहिए जिससे वह अधीनस्थों को स्पष्ट रूप से प्रेषित हो।

(ख) संदेश प्राप्तकर्ता की आवश्यकतानुसार संप्रेषण करें---- प्रेषक को प्राप्तकर्ता की समझ का स्तर पारदर्शक के समान स्पष्ट होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रबंधक को अपना संप्रेषण अधीनस्थों की समझ तथा उनकी शिक्षा के स्तर के आधार पर ही व्यवस्थित करना चाहिए।

(ग) संप्रेषण के पहले अन्य लोगों से परामर्श करें--- किसी संदेश को वास्तविक तौर पर संप्रेषित करने से पूर्व यह उचित है कि अन्य संबंधित लोगों को शामिल करके संप्रेषण की योजना बना लेनी चाहिए। अधीनस्थों की भागीदारी तथा उनका इसमें सम्मिलित होना उनकी तत्काल स्वीकृति व ऐच्छिक सहयोग प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होता है।

(घ) संदेश में प्रयुक्त भाषा, शैली तथा उसकी विषय---- वस्तु के लिए जागरूक रहें-संदेश में भाषा-प्रयोग, विषय-वस्तु शैली तथा इस प्रकार से संदेश का संचार होना है इत्यादि प्रभावी संप्रेषण के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। भाषा का प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए, जो संदेश प्राप्तकर्ता को भली-भाँति समझ में आए तथा श्रोता की भावनाओं को ठेस न पहुँचे। अत: संदेश इस प्रकार का होना चाहिए, जो श्रोताओं/सुनने वालों को उनकी प्रतिक्रियाएँ देने में उत्प्रेरक का कार्य करें।

(ङ) ऐसा संप्रेषण करें जो सुनने वालों के लिए सहायक हो तथा महत्त्वपूर्ण/मूल्यवान हो---- संदेश को अन्य लोगों को व्यक्त करते समय यह उचित है कि जिनके साथ संप्रेषण करना है. उनकी रुचियों व आवश्यकताओं को भली-भाँति जान लें। यदि संदेश उनकी अभिरुचियों व आवश्यकताओं से प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष तौर पर संबंधित है, तो अवश्य ही यह प्राप्तकर्ता से उनकी प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में सक्षम सिद्ध होगा।

(च) उपयुक्त प्रतिपुष्टि निश्चित करें---- प्रेषक, प्रेषित किए गए संदेश से संबंधित प्रश्न पछकर संप्रेषण की सफलता को निश्चित कर सकता है। वहीं संदेश प्राप्तकर्ता को भी संप्रेषण का प्रत्युत्तर के माया से जवाब देने हेतु प्रोत्साहित किया जा सकता है। अतः संप्रेषण संबंधी प्रक्रिया को प्राप्त प्रतिपुष्टि क अनुसार सुधारा जा सकता है, जिससे वह अधिक प्रतिक्रियात्मक बन सके।

प्रश्न 22. वित्तीय प्रबन्ध से आपका क्या अभिप्राय है? वित्तीय प्रबन्ध के मुख्य कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- वित्तीय प्रबंध---- वित्तीय प्रबंध किसी विशेष वित्तीय प्रचालन में सामान्य प्रबंधीय सिद्धांतों का अनुप्रयोग है। वित्त के लिए कुछ लागत की आवश्यकता होती ही है। अत: यह आवश्यक है कि इसकी आवश्यकता की व्यवस्था बहुत सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए। यह कहना सही ही होगा कि वित्तीय प्रबंध का संबंध इसकी उपलब्धता एवं वित्त के उपयोग से है। उपयुक्त उपलब्धता के लिए वित्त के कई उपलब्ध स्रोतों की पहचान की जाती है, उनके ऊपर आने वाले व्यय की तुलना की जाती है तथा इससे संबंधित जोखिम का भी ध्यान रखा जाता है। ठीक इसी प्रकार, जो वित्त प्राप्त हुआ है उसका विनियोग ऐसे किया जाता है कि उससे होने वाली आय उसकी लागत से अधिक हो। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जिस लागत पर वित्त-व्यवस्था की गई है उससे होने वाली आय, लागत से अधिक हो। कोष-प्राप्ति लागत को कम करना वित्तीय प्रबंध का लक्ष्य होता है। इसका उद्देश्य अनावश्यक वित्त से बचाकर रखना एवं आवश्यकता के समय पर्याप्त कोषों को उपलब्ध कराने का विश्वास दिलाना भी होता है। अत: वित्तीय प्रबंध का आशय आवश्यकतानुसार वित्त की समुचित व्यवस्था करना है। अतः यह कहना सही ही होगा कि व्यवसाय का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी वित्तीय व्यवस्था किस कोटि की है।

वित्तीय प्रबन्ध का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दी गई हैं जो इस प्रकार हैं---

जे०एल० मैसी (U.L.Massie) के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध एक व्यवसाय की वह संचालनात्मक प्रक्रिया है जो कुशल प्रचालनों के लिए आवश्यक वित्त को प्राप्त करने तथा उसका प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने के लिए दाई होती है।"

जे०एफ० ब्रेडले (UE Bradley) के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध व्यावसायिक प्रबन्ध का वह क्षेत्र है जिसका सम्बन्ध पूँजी के विवेकपूर्ण उपयोग एवं पूँजी साधनों के सतर्क चयन से है, ताकि व्यय करने वाली इकाई (फर्म) अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ सके।"

हॉवर्ड एवं उपटन (Howard and Upton) के शब्दों में, "वित्तीय प्रबन्ध नियोजन तथा नियन्त्रण को वित्त कार्य पर लागू करना है।"

वित्तीय प्रबन्ध के कार्य

एक व्यावसायिक उपक्रम में वित्तीय प्रबन्ध को कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य पूरे करने होते हैं, जिन्हें वित्त के कार्यों के रूप में हम जानते हैं। विशेषज्ञों ने वित्तीय प्रबन्ध के कार्यों को दो भागों में बाँटा है-(i) आवर्ती वित्त कार्य (Recurring Finance Functions) तथा (i) अनावर्ती वित्त कार्यों (Non recurring Finance Functions)। इनका विवरण अग्र प्रकार है---

आवर्ती वित्त कार्य---

आवर्ती वित्त कार्यों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार हैं---

1. कोषों का नियोजन---- एक वित्त प्रबन्धक को सबसे पहले कार्य-व्यवसाय हेतु चाहे वह नया हो अथवा पुराना, एक सदढ वित्तीय योजना तैयार करनी चाहिए। वित्तीय योजना से आशय ऐसी योजना से होता है जिसके द्वारा व्यवसाय के वित्तीय कार्यों का पहले से ही ऐसे निर्धारण किया जाता है। फर्म की वित्तीय योजना का निर्धारण ऐसे किया जाना चाहिए ताकि फर्म के कोषों का उचित प्रयोग हो सके तथा उनकी थोड़ी-सी भी बर्बादी न हो सके। वित्तीय योजना के निर्माण हेतु फर्म के दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन वित्तीय उद्देश्यों को निर्धारित करना होता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन वित्तीय नीतियों एवं व्यवहारों की रचना की जाती है।

2. कोषों का संग्रहण---- वित्तीय योजना के निर्माण के पश्चात वित्त प्रबन्धक को इसमें निर्धारित साधनों से कोषों का संग्रहण करना होता है। व्यवसाय की स्थापना के समय दीर्घकालीन कोषों की प्राप्ति हेतु अंशों का निर्गमन किया जाता है तथा इसके लिए अभिगोपकों की सेवाओं को उपयोग में लाया जाता है। पूर्व-स्थापित प्रतिष्ठित उपक्रम की स्थिति में वित्त प्रबन्धक को यह निर्णय लेना पड़ता है कि दीर्घकालीन वित्तीय साधन अंशों के निर्गमन से प्राप्त हो अथवा ऋणपत्रों द्वारा अथवा दोनों से। वित्त प्रबन्धक यह निर्णय उपक्रम की लाभदायकता, वर्तमान वित्तीय स्थिति, पूँजी एवं मुद्रा बाजार की स्थिति, वित्तीय संस्थाओं की सहायता करने की नीति आदि बातों को ध्यान में रखकर ही करता है। वित्त प्रबन्धक को भिन्न-भिन्न स्रोतों से पूँजी प्राप्त करने के वित्तीय परिणामों पर विचार करके दी हुई परिस्थितियों में श्रेष्ठ साधन का चुनाव करना चाहिए तथा इस साधन में अनुकूलतम शर्तों पर वित्त प्राप्त करना चाहिए। वित्त प्रबन्धक को चुने गए स्रोत से वित्त प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझौता करना चाहिए।

3. कोषों का आवंटन---- वित्त प्रबन्धक का अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य विभिन्न सम्पत्तियों के साधनों का आवंटन करना होता है। साधनों के आवंटनों में प्रतियोगी प्रयोगों, लाभदायकता, अनिवार्यता, सम्पत्तियों

के प्रबन्ध तथा फर्म के समग्र प्रबन्ध को ध्यान में रखना चाहिए। यद्यपि स्थायी सम्पत्तियों का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी वित्त प्रबन्धक की नहीं होती है, लेकिन उसे उत्पादन प्रबन्धक को स्थायी सम्पत्तियों की व्यवस्था करने में मदद करनी चाहिए। वित्त प्रबन्धक ही उत्पादन प्रबन्धक को पूँजी परियोजनाओं के विश्लेषण तथा फर्म के पास उपलब्ध पूँजी की जानकारी देता है। वित्त प्रबन्धक नकदी, प्राप्तियों तथा सामग्री के कुशल प्रशासन के लिए जिम्मेदार होता है। वित्त प्रबन्धक को चालू सम्पत्तियों में कोषों का विनियोजन करते समय लाभदायकता तथा तरलता में उचित समायोजन करना चाहिए।

4. आय का आवंटन--- फर्म की वार्षिक आय वित्त प्रबन्धक को विभिन्न प्रयोगों में आवंटित करनी आवश्यक होती है। फर्म की आय को विस्तार कार्यों हेतु रोका जा सकता है अथवा इसे देय ऋणों के भुगतान हेतु भी प्रयुक्त किया जाता है अथवा इसे मालिकों को लाभांश के रूप में भी वितरित किया जाता है। इस सम्बन्ध में निर्णय फर्म की वित्तीय स्थिति, वर्तमान तथा भविष्य नगदी आवश्यकताओं एवं अंशधारियों की आवश्यकतानुसार लिए जाते हैं।

5. कोषों का नियन्त्रण---- वित्त प्रबन्धक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य साधनों के उपयोग को नियन्त्रित करना होता है। इस कार्य हेत वित्तीय निष्पादन प्रमाप निर्धारित करते हैं तथा उनके सन्दर्भ में वास्तविक निष्पादन की जाँच करके विचलनों को ज्ञात करते हैं। यदि ज्ञात विचलन सह्य सीमा (Tolerance Limit) के बाहर होते हैं तो वहाँ शीघ्र सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है।

6. फर्म के अन्य विभागों से समन्वय--- किसी भी उपक्रम की सफलता उपक्रम के विभिन्न विभागों के कार्यों में पाए जाने वाले समन्वय पर निर्भर होती है। वित्त कार्य द्वारा व्यवसाय का प्रत्येक कार्य प्रभावित होता है। अत: वित्त विभाग तथा अन्य विभागों में अच्छा समन्वय होना आवश्यक है। वित्त प्रबन्धक का यह दायित्व होता है कि वह फर्म में लिए गए अनेक निर्णयों में इस प्रकार का समन्वय स्थापित कर जिससे उनमें एकरूपता आ जाए तथा वित्तीय उद्देश्यों की पूर्ति हो जाए एवं वित्तीय साधनों की बाधाए 'कार्यों को विपरीत रूप से कम-से-कम प्रभावित कर सकें।

अनावर्ती वित्त कार्य

अनावर्ती वित्त कार्य वे कार्य होते हैं जो एक वित्त प्रबन्धक को कभी-कभी ही सम्पन्न करने पड़ते हैं। कम्पनी के प्रवतन के समय वित्तीय योजना का निर्माण, संविलय के समय सम्पत्तियों का मल्यांकन. तरलता के अभाव के समय पुनर्समायोजना का कार्य आदि अनावर्ती वित्त कार्यों के प्रमुख उदाहरण हैं। इन विशेष घटनाआ क घटने के समय उत्पन्न होने वाली वित्तीय समस्याओं के समाधान के कार्य वित्त प्रबन्धक को ही करने चाहिए।

प्रश्न 23. वित्तीय प्रबन्धन तीन विस्तृत वित्तीय निर्णयों पर आधारित होता है। उन तीन निर्णयों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

उत्तर--- वित्तीय निर्णय

वित्तीय निर्णय से आशय सर्वोत्तम वित्तीय विकल्प या सबसे अच्छा विनियोग विकल्प है। वित्तीय निर्णय का अर्थ तीन विस्तृत निर्णयों से है जो निम्नलिखित हैं---

(i) निवेश संबंधी निर्णय, (ii) वित्तीयन संबंधी निर्णय, (iii) लाभांश संबंधी निर्णय।

(i) **निवेश संबंधी निर्णय**

सही अर्थों में किसी फर्मों के साधन उस तुलना में पर्याप्त नहीं होते जिनमें उनका उपयोग किया जा सकता है या लगाया जा सकता है। किसी फर्म को यह चुनाव करना होता है कि ऐसे साधनों को कहाँ पर विनियोजित किया जाए जिससे वे अपने निवेशकों को अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करा सकें इसलिए निवेश निर्णय का सीधा संबंध इस तथ्य से होता है कि फर्म के कोषों को कई प्रकार की संपत्तियों में किस प्रकार विनियोजित किया जाए।

निवेश निर्णय अल्पकालीन या दीर्घकालीन भी हो सकता है। दीर्घकालीन निवेश निर्णय को हम पूँजी बजटिंग निर्णय' नाम से भी जानते हैं। वित्त की वचनबद्धता प्राय: इसमें निहित होती है। उदाहरण के तौर पर आधुनिक समय में किसी प्रचलित मशीन के स्थान पर नई मशीन में निवेश करना या कोई नई शाखा खोलना या न संपत्ति का अधिग्रहण करना इसके उदाहरण हैं।

ऐसे निर्णय किसी भी व्यवसाय के लिए घातक होते हैं क्योंकि प्राय: ये दीर्घकाल में किसी फर्म लाभदायक क्षमता को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। पूँजी बजटिंग निर्णयों से प्रभावित होने वाले कारक संपत्तियों का आकार, लाभदायकता एवं तुलनात्मकता हैं। इसके अलावा ये समस्त निर्णय प्रायः निवेश की भारी मात्रा की राशि को समाहित किए होते हैं एवं इसका एक भारी लागत में कुछ अतिरिक्त परिवर्तन भी नहीं किया जा सकता है इसलिए एक बार निर्णय लेने के पश्चात् इनसे व्यवसाय को आजादी पाना काफी मुश्किल-सा ही होता है इसलिए ऐसे निर्णय लेते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के निर्णय प्राय: उन्हीं लोगों के द्वारा लिए जाने चाहिए जो इन्हें सही अर्थों में जानते हैं। किसी भी प्रकार का गलत पूँजी बजटिंग निर्णय साधारणत: किसी व्यवसाय की कार्यदक्षता को हानि पहुँचाता है एवं भविष्य में भी . यह वित्तीय भविष्य को ठेस पहुँचाता है।

(ii) वित्तीयन संबंधी निर्णय

वित्तीयन संबंधी निर्णय मुख्यतः दीर्घकालीन स्रोतों से धन प्राप्त करके वित्त के वितरण के सम्बन्ध में लिया जाता है। इसके संदर्भ में कई प्राप्त स्रोतों की पहचान की जाती है। अंशधारी कोष एवं उधारी निधियाँ मुख्य स्रोत हैं। किसी अंशधारी कोष का अर्थ समता पूँजी एवं प्रतिधारित उपार्जन से होता है। उधारी नीतियों से अर्थ ऐसे वित्त से है जिसका प्रबंध ऋणपत्रों के निर्गमन से है। समता पूँजी निधि एवं उधारी निधियाँ कंपनी में किस अनुपात में रखी जाएँ, यह कंपनी को स्वयं निर्धारित करना होता है। इस प्रकार का अनुपात कंपनियों के अपने मूल लक्षणों पर ही निर्भर करता है। कंपनियों को उधारी निधियों पर हमेशा पहले से निर्धारित ब्याज दर पर ही ब्याज देना होता है चाहे कंपनियों को लाभ हुआ हो या हानि। सिर्फ यही नही कम्पनी को पुनर्भुगतान भी तय समय के उपरांत ही करना पड़ता है। भुगतान न होने की चुक को वितीय जोखिम कहा जाता है। वितीय जोखिम को कई बार कंपनी के पास पर्याप्त मात्रा में लाभ न होने से भी मापा जाता है, क्योंकि कंपनी समय में भुगतान कर पाने में सक्षम नहीं होती है। दसरी तरफ इस प्रकार की कोई वचनबद्धता अंशधारियों की निधि की ओर से नहीं होती है कि वे प्रतिलाभ अथवा पंजी का पुनर्भुगतान करेंगे। कंपनी को सदैव वित्तीय फैसले लेने में विवेकपूर्ण होना चाहिए ताकि ऋण एवं समता का अनुपात उचित बना रहे। इस प्रकार के वित्तीय निर्णयों में अंश पूँजी, समता, ऋण, पर्वाधिकार प्रतिधारित उपार्जन हो सकते हैं।

इस प्रक्रिया में हर प्रकार के वित्त की लागत का अनमान लगाया जाता है। इसका कारण यह होता है कि स्रोत अन्य स्रोतों की अपेक्षा कभी-कभी सस्ते भी होते हैं। उदाहर माना जाता है और ब्याज पर किसी कर की कटौती, इसे अधिक सस्ता बना देती है।

हर स्रोत में जोखिम का भी भय होता है। प्रत्येक ऋण पर ब्याज का भुगतान एक निश्चित समय पर करना होता है किसी भी समता अंशों पर लाभांश का भुगतान करना जरूरी नहीं है। वित्तीय जोखिम वाली सिर्फ एक राशि होता है जिसे हम ऋण वित्तीयकरण नाम से जानते हैं। इस प्रकार ऋणगत वित्त में कुछ राशि वित्तीय जोखिम के रूप में होती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि कुल वित्तीय जोखिम कुल पूँजी में ऋण के अनुपात पर निर्भर करती है। निधि विकास अभ्यास भी कुछ मूल्य रखता है। ऐसा मूल्य परिवर्तनशील लागत कहलाता है। इसे तब भी समावेशित किया जाता है जब कई स्रोतों का मूल्यांकन किया जाता है। वित्तीय निर्णय तभी लिए जाते हैं जब यह पता हो कि वह उस स्रोत से कितना विकास करेगा। इस प्रकार का निर्णय सदैव वित्तीय जोखिम एवं व्यवसाय की कुल लागत को निर्धारित करता है।

(iii) लाभांश संबंधी निर्णय

लाभांश के वितरण का निर्णय तीसरा महत्त्वपूर्ण निर्णय है जो हर वित्तीय प्रबंध को करना पड़ता है। लाभांश प्राय: लाभ का वह भाग होता है जो कि अंशधारियों में वितरित किया जाता है। ऐसे निर्णय में यह आकलन किया जाता है कि प्राप्त लाभ का कितना भाग फर्म में प्रतिधारित उपार्जन के रूप में पुनर्विनियोजनार्थ रखा "जाए एवं कितना भाग अंशधारियों में लाभ के रूप में वितरित किया जाए,

ताकि विनियोग की आवश्यकता को पर्ण किया जा सके। लाभांश यद्यपि वर्तमान आय का ही द्योतक है अत: प्रतिधारित उपार्जन का पुनर्विनियोजन फर्म की भविष्य में आय बढ़ाने में सहायक होता है। फर्म के वित्तीय निर्णय को प्रतिधारित उपार्जन की सीमा प्रभावित करती है। किसी फर्म को जब प्रतिधारित उपार्जन के पुनर्निवेश की उतनी जरूरत नहीं होती है जितनी प्रतिधारित उपार्जन की मात्रा कंपनी में उपलब्ध है, तो लाभांश के वितरण से संबंधित निर्णय लेते समय अंशधारियों की संपत्ति को अधिक सीमा तक वृद्धि के उद्देश्य को देखते हुए ध्यान में रखकर लेना चाहिए।

प्रश्न 24. लाभांश निर्णय को प्रभावित करने वाले कारकों/घटकों की व्याख्या करें। [NCERT]

उत्तर- लाभांश संबंधी निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक---- किसी भी कंपनी के कुल लाभ में से कितने प्रतिशत लाभ अंशधारियों में एवं कितने प्रतिशत भाग व्यवसाय में प्रतिधारित किया जाए, इस बात पर कई कारकों का प्रभाव पड़ता है। उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण कारक नीचे वर्णित हैं---

(क) उपार्जन---- लाभांश संबंधी निर्णय लेते समय उपार्जन एक प्रमुख निर्धारक तत्व है क्योंकि लाभांशों का

भुगतान वर्तमान तथा भूतकालीन उपार्जनों में से ही किया जाता है।

(ख) उपार्जन का स्थायित्व--- यदि किसी कंपनी की उपार्जन अस्थिर है तो वह कम लाभांश देगी। इसके विपरीत यदि किसी कंपनी की उपार्जन क्षमता स्थायी है तो वह अधिक लाभांश घोषित करने की अवस्था में होती है।

(ग) लाभांश का स्थायित्व--- कंपनियाँ प्रायः प्रति अंश लाभांश स्थिरीकरण की नीति अपनाती हैं। अंशो पर लाभांश को तब तक नहीं बढ़ाया जाता जब तक कि उपार्जन में बढ़ोतरी बहन अधिक न हो या जब वृद्धि कम हो जब उसकी प्रकृति अस्थायी हो तो लाभांश में वृद्धि मख्यतः नही की जाती है। लाभांश का

व्यवसाय अध्ययन-12 व्यावसायिक वित्त मात्रा में बढ़ोतरी मुख्यतः तब की जाती है जब ज्यादा लाभ उपार्जन की संभावनाएँ प्रबल हों एवं वह संभावना भी सिर्फ चालू वर्ष की ही नहीं होनी चाहिए यद्यपि भविष्य में भी चलती रहनी चाहिए।

(घ) संवृद्धि सुयोग--- ऐसी कंपनियाँ जो विकास की चरम सीमा पर होती हैं वे अधिक धन अपनी प्रतिधारित राशि में से कंपनी में ही रख लेती हैं ताकि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर इसे वह अपनी कंपनी में निवेश कर सके। एक सम्पन्न एवं विकसित कंपनियों का लाभांश हमेशा उन कंपनियों से अधिक होता है जो अपनी उन्नति का लक्ष्य प्राप्त करने में पीछे रह जाती हैं।

(ङ) रोकड़ प्रवाह स्थिति--- एक कंपनी लाभार्जन तो प्राप्त कर रही होती है लेकिन उसमें रोकड़ की कमी होती है। अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि लाभांश में रोकड़ का बहिर्गमन निहित होता है। किसी भी कंपनी के द्वारा अपना लाभांश घोषित करने के पर्व उसके पास पर्याप्त मात्रा में रोकड़ का होना अति आवश्यक है।

(च) पूर्वाधिकार अंशधारी---- जब किसी कंपनी द्वारा लाभांश की घोषणा की जाती है तो उस समय कंपनी के प्रबंधकों के मन में इस संदर्भ में पूर्वाधिकार अंशधारियों का ध्यान रखना जरूरी होता है। हमेशा अंशधारी इस उम्मीद में रहते हैं कि कुछ राशि उन्हें भी लाभांश के रूप में मिल जाए। यही कारण है कि कंपनियाँ हमेशा लाभांश की घोषणा करती हैं।

(छ) करारोपण नीति--- लाभांश की दर भी सरकार की कर नीति पर निर्भर करती है। वर्तमान कर पद्धति

के अंतर्गत अंशधारियों के लिए लाभांश आय कर-मुक्त आय होती है जबकि कंपनी को अंशधारियों को दिए जाने वाले लाभांश पर कर का भुगतान करना पड़ता है। यदि लाभांश पर करों का भार अधिक होगा तो अच्छा होगा एवं लाभांश के भुगतानार्थ कम धनराशि का भुगतान करना पड़ेगा। इसकी तुलना में यदि कर की दर कम होगी तो लाभांश भुगतान की राशि अधिक होगी। इस प्रकार कर की आधुनिक नीति के आधार पर अंशधारी ऊँची लाभांश राशि को ही प्राथमिकता देते हैं।

(ज) शेयर बाजार प्रतिक्रिया--- यदि शेयर बाजार की कीमतों की प्रतिक्रिया सकारात्मक हो एवं लाभांश में वृद्धि हो तो निवेशक इसे एक सकारात्मक सोच के रूप में लेते हैं। इसके विपरीत यदि लाभांश की मात्रा में कमी हो तो अंशों के मूल्यों पर शेयर बाजार में अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। यही कारण है कि प्रबंध द्वारा लाभांश नीति-निर्धारण में इन बातों का ध्यान रखा जाता है।

(झ) पूँजी बाजार तक पहुँच---- किसी बड़ी कंपनी के लिए पूँजी बाजार तक पहुँच बनाना आसान कार्य है, इसलिए कंपनियाँ विकास के लिए प्रतिधारित उपार्जन पर कम निर्भर दिखती हैं। ऐसी कंपनियाँ मुख्यत: अपने अंशधारियों की तुलना में अधिक लाभांश का भुगतान करती हैं, ऐसी कंपनियों से अपेक्षाकृत कुछ छोटी हैं एवं उनकी पहुँच पूँजी बाजार तक कम ही होती है।

(ज) कानूनी बाध्यता--- लाभांश भुगतान पर कंपनी अधिनियम के कुछ प्रावधान प्रायः प्रतिबंध लगाते हैं। ऐसे प्रावधानों का लाभांश घोषणा के समय पालन किया जाना चाहिए।

(ट) संविदात्मक प्रतिबंध--- कंपनी को जब किसी ऋणदाता द्वारा ऋण प्राप्त करने की अनुमति मिल जाती है, तो ऋणदाता द्वारा कंपनी पर लाभांश भुगतान पर कुछ प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं। साथ ही वे (ऋणदाता) इस बात के लिए भी आश्वासन लेते हैं कि लाभांश भुगतान संबंधी ऋण की सभी शर्तों का पूरी तरह पालन किया जाएगा।

प्रश्न 25. पूँजी संरचना का अर्थ बताइए। पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- पूँजी संरचना का अर्थ-लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 4 का उत्तर देखें।

पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले कारक----किसी भी फर्म की पूँजी संरचना या ढाँचे का निर्धारण करने में कई प्रकार की नीतियों से संबंधित अनुपात का निर्धारण समावेशित होता है। यह कई कारकों पर निर्भर करता है। किसी ऋण को हमेशा से सेवा की अपेक्षा होती है। किसी व्यवसाय के लिए ब्याज का भुगतान एवं ऋण का पुनर्भुगतान मूलरूप से आवश्यक होता है। इसके अलावा यदि कोई कंपनी ऋण में बढ़ोतरी के बारे में विचार बना रही है तो उसे ऋण की मात्रा में बढ़ोतरी होने के कारण पर्याप्त मात्रा में रोकड की व्यवस्था, भुगतान करने के लिए कर लेना चाहिए। ठीक इसी प्रकार पूँजी संरचना के चुनाव को निर्धारित करने वाले कई महत्त्वपूर्ण कारक निम्न हैं---

1. रोकड़ प्रवाह स्थिति---- पँजी संरचना के निर्माण से संबंधित निर्णय भी व्यवसाय की पर्याप्त रोकड़-प्रवाह करने की योग्यता पर निर्भर करता है। रोकड़ प्रवाह से अर्थ सिर्फ स्थायी रूप से रोकड़ के भुगतान मात्र से नहीं है यद्यपि पर्याप्त मात्रा में बफर का होना भी है। सामान्य व्यावसायिक संचालन के लिए स्थायी संपत्तियों में निवेश, ऋण-सेवा वचनबद्धता का परिपालन करने के लिए एक कंपनी इन आभारों का रोकड़ में भुगतान करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऋण के मूलधन के पुनर्भुगतान एवं ब्याज के भुगतान के लिए भी उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. ब्याज आवरण अनुपात (आई०सी०आर०)--- लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 6 का उत्तर देखें।

3. ऋण सेवा आवरण अनुपात (डी० एस०सी० आर०)--- लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 6 का उत्तर देखें।

4. निवेश पर आय (आर०ओ०आई०)--- कंपनी की निवेश पर आय यदि उच्च दर की है तो प्रति अंश आय की वृद्धि के लिए कंपनी समता पर व्यापार के उपयोग का चुनाव कर सकती है। अत: इसकी ऋण उपयोग की योग्यता उच्च श्रेणी की है। हम पहले ही यह चर्चा कर चके हैं कि एक कंपनी, प्रति अंश आय में बढ़ोतरी करने के लिए अधिक ऋणों का उपयोग कर सकती है।

5. ऋण की लागत--- यदि फर्म ब्याज की कम दर पर उधार कोष की व्यवस्था कर सकती है तब यह समता की तुलना में ऋण को अधिक प्राथमिकता देगी।

6. कर दर--- उच्च कर दर ऋण को सस्ता स्रोत बनाती है क्योंकि ऋण प्रतिभूति धारकों की चुकाए जाने वाले ब्याज को दर की गणना से पहले आय में से घटा दिया जाता है जबकि कंपनियों को अंशधारकों को चुकाए जाने वाले लाभांश पर कर का भुगतान करना पड़ता है। इसलिए उच्च कर दर

का अर्थ है पूँजी ढाँचे में ऋण को प्राथमिकता देना, जबकि कम दर होने पर हम पूँजी ढाँचे में समता को प्राथमिकता दे सकते हैं।

7. समता की लागत--- समता की लागत पूँजी ढाँचे को निश्चित करने में सहायता करती है। हर अंशधारी स्वयं द्वारा धारित अंश-पूँजी पर उसके द्वारा लिए गए जोखिम के अनुपात में आय प्राप्त करने की इच्छा रखता है। कंपनी जब ऋण की मात्रा में बढ़ोतरी करती है तो अंशधारियों की वित्तीय जोखिम में भी वृद्धि हो जाती है। अत: उनकी आशान्वित आय में वृद्धि हो जाती है। इसका मूल कारण यह है कि कंपनी ऋणों का प्रयोग उस सीमा से ऊपर नहीं किया जा सकता जिसके लिए वे ऋण ग्रहित किए गए हैं लेकिन यदि किसी कारणवश उन ऋणों का प्रयोग सीमा से ऊपर किया जाता है तो समता की लागत बहुत तेजी से बढ़ जाती है एवं अंशों का मूल्य ई०पी०एस० में वृद्धि होने पर भी घटना शुरू हो जाता है इसीलिए हमेशा अंशधारियों को अधिक लाभान्वित करने के लिए, ऋणों का उपयोग एक निश्चित सीमा से ऊपर नहीं करना चाहिए।

8. प्रवर्तन लागत---- अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन में शामिल लागत को प्रवर्तन लागत कहते हैं। इन लागतों में विज्ञापन की लागत, वैधानिक फीस या अभिगोपन इत्यादि शामिल हैं। यह लघु कंपनियों के लिए मुख्य विषय है परंतु बड़ी कंपनियाँ भी इस कारक की अवहेलना नहीं कर सकती क्योंकि पूँजी बाजार में प्रवेश करने से पहले लागत के साथ कई कानूनी औपचारिकताओं को भी पूरा करना होता है।

9. जोखिम का ध्यान---- वित्तीय जोखिम से अभिप्राय एक ऐसी स्थिति से है जब कंपनी अपने स्थायी वित्तीय प्रभारों; जैसे कि ब्याज, पूर्वाधिकार लाभांश, लेनदारों को भुगतान इत्यादि को पूरा करने में असमर्थ होती है। इन वित्तीय जोखिमों के अलावा, सभी व्यवसायों के संचालन जोखिम भी होते हैं जिन्हें व्यावसायिक जोखिमों के नाम से जाना जाता है। ऐसे जोखिम मुख्यत: स्थायी संचालन लागतों पर निर्भर करते हैं। अधिक दर के स्थायी संचालन लागत के कारण व्यावसायिक जोखिम का मान भी अधिक होता है या इसके विपरीत क्रम में भी होता है। यदि फर्म का व्यावसायिक जोखिम निम्न दर का है तो इसकी ऋण उपयोग क्षमता अधिक होगी या विपरीत क्रम में होगी।

10. लचीलापन---- एक फर्म यदि अपनी ऋण संभाविता का पर्ण रूप से उपयोग करे तो वह और अधिक ऋणों के बोझ को नहीं उठा पाती है। अत: किसी फर्म को लचीलापन बनाए रखने के लिए अपनी ऋण लेने की क्षमता को बनाए रखना चाहिए।

11. नियत्रण---- एक कंपनी का समता अंशों में सार्वजनिक निर्गमन कंपनी में प्रबंध की पकड को कमजोर बनाता है और इस स्थिति में अन्य लोगों को अधिकार में लेने के योग्य बनाता है। ऐसा घटक ही ऋण एव समता के बीच चुनाव को प्रभावित करता है. मख्यतः कंपनियों में जहाँ वर्तमान अवस्था में प्रबंध की पकड़ कुछ कमजोर होती है।

12. नियामक ढाँचा---- प्रत्येक कंपनी के नियामक ढाँचे का निर्माण विधान के अनुसार किया जाता है। हर कम्पनी का प्राय: इसके अधीन चलना होता है। उदाहरण के तौर पर ऋण-पत्रों या अंशों का निर्गमन सेबी का हिदायतों के अधीन ही होता है। यदि बैंक अथवा अन्य वित्तीय संस्थाओं से हमें ऋण लेना होता है तो उनके बनाए गए सभी मानकों को बाखूबी पूरा करना होता है।

प्रश्न 26. कार्यशील पूँजी से क्या आशय है? इसकी गणना किस प्रकार की जाती है? कार्यशील पूँजी को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- कार्यशील पूँजी से आशय---- कार्यशील पूँजी से आशय चालू दायित्वों पर चालू सम्पत्तियों के आधिक्य से है। अन्य शब्दों में, चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों पर आधिक्य कार्यशील पूँजी कहलाता है।

कार्यशील पूँजी की गणना--- कार्यशील पूँजी की गणना इस प्रकार की जाती है---

कार्यशील पूँजी = चालू सम्पत्तियाँ - चालू दायित्व

Working Capital = Current Assets - Current Liabilities

कार्यशील पूँजी आवश्यकता को प्रभावित करने वाले कारक

कार्यशील पूँजी आवश्यकता को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं--

1. व्यवसाय की प्रकृति--- किसी व्यवसाय की मूल प्रकृति उसकी कार्यशील पूँजी की जरूरत को अवश्य ही प्रभावित करती है। यदि एक संगठन कच्चे माल का क्रय करके उसका उपभोक्ता वस्त के रूप में निर्माण करता है तो उसे अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है लेकिन यदि व्यापारिक संगठन सिर्फ क्रय तथा विक्रय करता है तो उसे कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि कच्चा माल खरीदकर तुरंत बेच दिया जाता है या कभी तो माल प्राप्त होने के पूर्व ही उसका सौदा कर दिया जाता है लेकिन निर्मायक उद्योग में उसे उपभोग योग्य तैयार किया जाता है फिर कहीं जाकर उसे बिक्री के योग्य बनाया जाता है। सेवा उद्योगों को कुछ भी माल स्टॉक रखने की आवश्यकता नहीं होती अतः इन्हें कार्यशील पूंजी की आवश्यकता कम ही पड़ती है। मोटे तौर पर एक व्यापारिक इकाई को कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

2. संचालन का स्तर---- जिन उद्यमों का संचालन स्तर बड़ा या उच्चकोटि का होता है उन्हें अधिक कार्यशील पूंजी की मात्रा की आवश्यकता होती है एवं उन्हें स्टॉक तथा देनदारों की मात्रा बहुत अधिक रखनी पड़ती है। इसके विपरीत, जिन व्यापारिक संचालन का स्तर निम्नकोटि का होता है उन्हें कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

3. व्यवसाय चक्र–– फर्म की कार्यशील पूँजी पर व्यावसायिक चक्र का भी प्रभाव पड़ता है। मंदी के समय बिक्री तथा उत्पादन निम्न स्तर के होते हैं अत: कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत व्यापार, उत्कर्ष के समय बिक्री तथा उत्पादन दोनों में बढ़ोतरी होती है।

4. मौसमी कारक---- कई व्यवसाय ऐसे भी होते हैं जो मुख्यत: मौसम पर निर्भर होते है. जैसे- आइसक्रीम, ऊनी कपड़े बनाने वाली फैक्ट्री आदि। मौसम के चरमसीमा पर इनका व्यापार अधिक गतिशील होता है, अतः इन्हें अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत. उतरते मौसम में व्यवसाय की क्रिया मंद हो जाती है तब कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती

5. उत्पादन चक्र--- कच्चे माल की प्राप्ति से लेकर उस माल के पक्के माल में परिवर्तित होने तक के समय अंतराल को उत्पादन चक्र कहते हैं। कुछ व्यवसायों का उत्पादन चक्र लघु तो कुछ का दीर्घकालीन होता है। जिन व्यवसायों का उत्पादन चक्र दीर्घकालीन होता है उन्हें कार्यशील पूँजी की आवश्यकता अधिक होती है। इसके विपरीत, जिन व्यवसायों का उत्पादन चक्र लघु होता है उन्हें कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

6. उधार विक्रय सुविधा--- कई कंपनियाँ उधार नीति के आधार पर अपना माल बेचती हैं। उधार नीति प्रतियोगिता स्तर पर निर्भर करती है एवं ग्राहक वर्ग की योग्यता के आधार पर भी उधार दिया जाता है। एक उद्यम को उधार नीति अपनाने के लिए एवं देनदारों की संख्या में इजाफा कराने के लिए ज्यादा कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

7. उधार क्रय सुविधा--- यदि कोई कंपनी अपने ग्राहकों को उधार माल बेचती है तो उसे उधार क्रय पर माल मिल जाता है। कंपनी जितना अधिक कोई उधार माल क्रय करेगी, उसे उतनी ही कम कार्यशील पूँजी की जरूरत होगी। 8. संचालन कार्यकुशलता--- कंपनियाँ अपने व्यापार का संचालन बड़ी कुशलतापूर्वक करती हैं। उदाहरण के तौर पर यदि कंपनी कुशल संचालन के तहत जल्द ही उधार वसूल लेती है एवं कम माल के शेष (स्टॉक) से ही काम चला लेती है तो ऐसी कंपनियों को कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पडती है। कशल कार्यकशलता से माल स्टॉक में ज्यादा इकटठा न होकर बाजार में जाता है और कच्चे माल की तुलना में अधिक-से-अधिक तैयार माल प्राप्त होता है। अत: ऐसी परिस्थितियों में कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

9. कच्चे माल की उपलब्धि--- यदि कंपनियों को कच्चा माल एवं अन्य आवश्यक वस्तुएँ सुगमता से प्राप्त होती रहती हैं, तो माल का थोड़ा स्टॉक भी पर्याप्त होता है लेकिन यदि माल आसानी से प्राप्त नहीं होता तो माल के भारी स्टॉक की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, माल मँगाने की तिथि एवं माल-पूर्ति की तिथियों में यदि अंतर अधिक होगा तो भी कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पर प्रभाव पड़ता है, इसे व्यापारिक भाषा में हम लीडटाइम के नाम से जानते हैं। लीडटाइम जितना अधिक होगा उतनी ही कार्यशील पूँजी की अधिक आवश्यकता होगी।

10. विकास प्रत्याशा–- जिस व्यवसाय के विकास की संभावनाएँ अधिक होती हैं या व्यवसाय अपने विकास की चरमसीमा पर होता है तो इसके लिए अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसकी सहायता से वह अधिक कच्चा माल खरीदकर ज्यादा उत्पादन कर सकेगा।

11. मुद्रास्फीति--- मुद्रास्फीति के अधिक होने से कार्यशील पूँजी की आवश्यकता भी बढ़ जाती है क्योंकि मुद्रास्फीति की अवस्था में प्रत्येक वस्तु के मूल्य में बढ़ोतरी हो जाती है एवं बिक्री को स्थायी बनाए रखने के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जिस प्रतिशत में मुद्रा प्रसार की दर बढ़ेगी उसी प्रतिशत में कार्यशील पूँजी की मात्रा भी बढ़ेगी। वास्तविक कार्यशील पूँजी की जरूरत कई घटकों; जैसे-श्रम लागत, कच्चा माल, अर्द्धनिर्मित माल, तैयार माल आदि के मूल्यों में वृद्धि के अनुसार होगी एवं उसका कुल आवश्यकता में क्या अनुपात है, इन कई बातों पर भी कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पर प्रभाव पड़ेगा।

प्रश्न 27. विभिन्न मनी मार्केट इंस्ट्रूमेंट की व्याख्या करें। [NCERT]

अथवा

मुद्रा बाजार से आपका क्या आशय है? मुद्रा बाजार में प्रयुक्त विभिन्न प्रपत्रों की विवेचना कीजिए।

उत्तर-- द्रव्य या मुद्रा बाजार

जैसा कि हम जानते हैं कि द्रव्य या मुद्रा बाजार के अन्तर्गत एक वर्ष से कम परिपक्वता वाले वित्तीय प्रपत्रों का व्यापार किया जाता है। ये वित्तीय प्रपत्र द्रव्य के लिए निकट विकल्प होते हैं। इस बाजार के अन्तर्गत कम जोखिम, आरक्षित एवं लघुकालिक ऋण प्रपत्र होते हैं जोकि उच्च तरल, दैनिक निर्गमित एवं सक्रिय व्यापार करने योग्य होते हैं। इसकी कोई भौतिक स्थानियता नहीं होती है बल्कि ये तो ऐसी प्रक्रिया है जो टेलीफोन व इंटरनेट के द्वारा सम्पादित की जाती हैं। ये प्रपत्र अस्थायी रोकड़ की कमी एवं देनदारियों को निपटाने हेतु अल्पकालिक निधि को उगाहने में भी सक्षम होते हैं तथा साथ-ही-साथ आय की वापसी के लिए अधिक या बेशी निधियों के अस्थायी फैलाव के लिए भी उपयुक्त होते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक, कॉमर्शियल बैंक, गैर-बैंकिंग वित्त कंपनियाँ, राज्य सरकारें, बड़े-बड़े औद्योगिक घराने, म्युचुअल फण्ड आदि इस प्रकार के प्रमुख प्रतिभागी हैं।

द्रव्य या मुद्रा बाजार के प्रपत्र (इंस्ट्रमेंट)

द्रव्य या मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्र निम्नलिखित हैं--

1. राजकोष (ट्रेजरी) बिल– यह बिल मुख्यतः एक वर्ष से कम अवधि में परिपक्व होने वाले भारत सरकार के द्वारा ऋणदान के रूप में दिया जाने वाला एक लघुकालिक प्रपत्र होता है। इस प्रपत्र को शून्य कूपन बंधयक भी कहा जाता है, जिसे केन्द्रीय सरकार के पक्ष में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निधि की लघुकालिक आवश्यकताओं के लिए जारी किया जाता है। राजकोष बिलों को एक बचत-पत्र के रूप में जारी किया जाता है। ये उच्च तरलता एवं सुनिश्चित वापसी या लब्धि-प्राप्ति युक्त तथा अदायगी के जोखिम से मुक्त होते हैं। ये बिल एक ऐसे मूल्य पर जारी किए जाते हैं जो अपने अंकित मूल्य से कम के होते हैं परन्तु इनका भुगतान उनके अंकित मूल्य तक किया जाता है। इस प्रकार, जिस मूल्य पर राजकीय बिल जारी होता है तथा उस पर प्राप्य ब्याज के साथ उसके मोचन मूल्य का अंतर होता है, उसे बट्टा (डिस्काउंट) कहते हैं। ये बिल ₹25,000 के न्यूनतम मूल्य और इसके पश्चात् बहुगुणन में प्राप्य होते हैं। आइए इसे एक उदाहरण द्वारा समझते हैं--

उदाहरण---- माना कि कोई निवेशक 91 दिनों के लिए₹2,00,000 अंकित मूल्य के राजकीय बिल ₹1,92,000 में खरीदता है। वह इसे इसकी परिपक्वता अवधि तक अपने पास रखने के पश्चात् निवेशक बिल क बदले में₹2,00,000 प्राप्त करता है। यहाँ पर भगतान राशि एवं परिपक्वता के पश्चात् प्राप्त राशि के मध्य ₹ 8.000 का अंतर है। यह राशि बिल की खरीद पर निवेशक को ब्याज के रूप में प्राप्त का प्रतिनधित्व करती है।

2. वाणिज्यिक (तिजारती) पत्र------ यह पत्र एक लघकालिक एवं आरक्षित बचत-पत्र होता है जिसे बेचान के द्वारा अंतरणीय एवं पराक्रम्य किया जा सकता है। यह पत्र अपनी परिपक्व अवधि के पश्चात् एक सुनिश्चित अंतरण या सुपुर्दगी भी प्रदान करता है। इन पत्रों को बड़ी-बड़ी एवं उधार पात्रता फमा द्वारा लघकालिक बाजार दर से कम दर पर निधि की उगाही करने के लिए जारी किया जाता ह। इसका परिपक्वता अवधि प्राय: 15 दिन से लेकर एक वर्ष तक होती है। बड़ी-बड़ी फर्मों द्वारा वाणिज्यिक पत्रों का प्रचालन किया जाना बैंक से उधार लेने की तुलना में एक अच्छा विकल्प है, जिन्हें प्राय: वित्तीय रूप से सुदृढ़ माना जाता है। इन्हें बट्टे के साथ बेचा एव

के साथ बेचा एवं सममूल्य पर मोचित किया जा सकता है। इन पत्रों का मुख्य उद्देश्य लघुकालिक मौसमी एवं कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं हेतु निधि उपलब्ध कराना है। उदाहरणार्थ, बड़ी-बड़ी फर्मे इन प्रपत्रों को सेतु वित्तीयता (ब्रिज फाइनेंस) जैसे उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त करती हैं। आइए, इसे भी एक उदाहरण द्वारा समझते हैं- उदाहरण----- माना एक निजी फर्म को मशीन खरीदने के लिए दीर्घकालिक वित्त की आवश्यकता है। यदि वह पूँजी बाजार में दीर्घकालिक वित्त लेती है तो उसे चल पूँजी (फ्लोटेशन कास्ट) उठानी पड़ेगी। इसके अन्तर्गत चल पूँजी के निर्गमन; जैसे–ब्रोकऐज कमीशन, आदेश-पत्रों की छपाई एवं विज्ञापन आदि के खर्च सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार वाणिज्यिक पत्रों के माध्यम से अस्थायी पूँजी की उगाही करके फ्लोटेशन की लागत प्राप्त की जाती है। इसे ही सेतु वित्तीयता (ब्रिज फाइनेंस) कहते हैं।

3. शीघ्रावधि द्रव्य---- यह द्रव्य एक लघुकालिक माँग पर पुनर्भुगतान किए जाने हेतु वित्त है, जिसकी परिपक्वता अवधि 1 दिन से लेकर 15 दिन तक की होती है। इसका उपयोग अंतर बैंक अंतरण के लिए भी किया जाता है। हम जानते हैं कि वाणिज्यिक बैंकों को एक न्यूनतम रोकड़ शेष अनुरक्षित करके रखना होता है, जिसे रोकड़/नकदी आरक्षण या नकदी रिजर्व अनुपात कहा जाता है। समय-समय पर भारतीय रिजर्व बैंक इस नकदी रिजर्व अनुपात को परिवर्तित करता रहता है जिसके कारण वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिए गए ऋणों की उपलब्ध निधियाँ भी प्रभावित होती हैं। इस प्रकार, शीघ्रावधि द्रव्य वह द्रव्य है जिसके द्वारा वाणिज्यिक बैंक एक-दूसरे से नकदी उधार लेकर अपने-अपने नकदी आरक्षण अनुपात को बचाये रखने में सक्षम हो जाते हैं। शीघ्रावधि ऋण के बदले में भगतान किए जाने वाले ब्याज को शीघ्रावधि दर के नाम से जाना जाता है। यह दर अस्थिर होती है। अर्थात् दिन-प्रतिदिन यहाँ तक कि घंटों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। शीघ्रावधि दर तथा मद्रा बाजार से सम्बन्धित अन्य लघकालिक प्रपत्रों; जैसे-बचत प्रमाण-पत्र एवं वाणिज्यिक पत्र आदिके मध्य बिल्कुल विपरीत संबंध होता है। शीघ्रावधि द्रव्य के अन्तर्गत वृद्धि अन्य स्रोतों से भिन्न: जैसे-वाणिज्यिक पत्रों या बचत प्रमाण-पत्रों द्वारा जुटाते हैं। इन स्रोतों से प्राप्त होने वाली निधि बैंकों द्वारा प्रदान की गई निधियों की तुलना में बहुत सस्ती होती है।

4. बचत प्रमाण-पत्र---- ये पत्र भी लघुकालिक प्रपत्र होते हैं जोकि आरक्षित, बेचनीय एवं धारक के रूप में वाणिज्यिक बैंकों तथा विकास वित्त संस्थानों द्वारा जारी किए जाते हैं। बचत प्रमाण-पत्र वैयक्तिक रूप से उद्यमों, निगमों एवं कंपनियों को उनकी कठिन द्रवता के समय में तब जारी किए जा सकते है जब बैंकों में बचत दर मंद हो परन्तु ऋण की मांग उच्च हो। ये लघु काल के लिए अत्यधिक मात्रा में द्रव्य संचारित करने में बहुत सहायक होते हैं।

5. वाणिज्यिक बिल---- यह बिल एक विनिमय योज्य बिल है जोकि व्यावसायिक फर्मों द्वारा कार्य पूंजी की आवश्यकता हेतु वित्तीयन में प्रयोग किया जाता जाता है। यह एक लघुकालिक, बेचनीय एवं स्वयं द्रवीकृत प्रपत्र होता है जिसे किसी व्यावसायिक फर्म का बिक्री को वित्तीयन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। जब कोई विक्रेता अपने माल को उधारी (साख) पर बेचता है टो उस माल का क्रेता देनदार बन जाता है जिसे भविष्य में एक निश्चित तिथि पर भुगतान करना होता है। विक्रेता उस निश्चित तिथि तक प्रतीक्षा करके विनिमय बिल का उपयोग करता है। ऐसा करने पर, माल का विक्रेता तो बिल का आहरण करता है और माल का क्रेता इसे स्वीकार करता है। क्रेता द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर महाबल एक पण्य या विक्रेय (मार्केटेबल) प्रपत्र बन जाता है, और इसे व्यापारिक बिल कहा हा याद माल के विक्रेता को बिल के परिपक्व होने से पहले ही निधियों की आवश्यकता पड़ती है तो बिल किसी भी बैंक द्वारा बट्टा (डिस्काउंट) कम करके लिए बैंक द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो यह वाणिज्यिक बिल कहलाता हा

प्रश्न 28. प्राथमिक बाजार का अर्थ बताइए। प्राथमिक बाजार के अन्तर्गत अस्थायी पूँजी (फ्लोटेशन) की विधियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर---- प्राथमिक बाजार

प्राथमिक बाजार को नए निर्गमन बाजार के रूप में भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत पहली बार जारी होने वाले अर्थात् नई प्रतिभूतियों का लेन-देन किया जाता है। प्राथमिक बाजार का मुख्य कार्य बचतकर्ताओं से निवेश योग्य पूँजी प्राप्त करके नए उद्योग लगाने वाले उद्यमियों या पहली बार प्रतिभूतियों को जारी करके अपने वर्तमान व्यवसाय का विस्तार करने वाले उद्यमियों तक पहुँचाना है। बैंक, वित्तीय संस्थान, बीमा कम्पनियाँ, म्युचुअल फंड तथा व्यक्तिगत रूप से निवेश इस बाजार के प्रमुख निवेशक होते हैं। . कोई भी कम्पनी प्राथमिक बाजार में पूँजी को इक्विटी शेयरों, अधिमान (प्रिफरेंस) शेयरों, ऋण-पत्रों, ऋणों तथा बचतों के रूप में लगा सकती है तथा इस पूँजी का प्रयोग नयी परियोजनाओं को लगाने, विस्तार करने, वैविध्यीकरण, वर्तमान परियोजनाओं का नवीनीकरण करने, विलय एवं अधिकार में लेने या खरीदने आदि के लिए कर सकती है।

अस्थायी पूँजी (फ्लोटेशन) की विधियाँ

एक प्राथमिक बाजार के अन्तर्गत अस्थायी पूँजी (फ्लोटेशन) के नए निर्गमन की कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नवत हैं-

1. विवरण पत्रिका के माध्यम से प्रस्ताव---- यह विधि प्राथमिक बाजार में सार्वजनिक कम्पनियों द्वारा निधि उगाहने (वित्त प्राप्त करने) की सबसे अधिक लोकप्रिय विधि है। इसके अन्तर्गत एक विवरण पत्रिका जारी कराकर जनता को अंशदान करने के लिए निमंत्रित करते हैं। यह विवरण पत्रिका निधि उगाहने के लिए जनता (निवेशकों) से प्रत्यक्ष अपील करती है, जिसके लिए समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, दूरदर्शन आदि माध्यमों से विज्ञापन जारी किए जाते हैं। यह निर्गमन जोखिम अंकन (हामीदारी) तथा कम-से-कम एक शेयर बाजार में सूचीबद्ध किए जाने की अपेक्षा रखने योग्य हो सकता है। विवरण पत्रिका की विषयवस्तु कंपनी अधिनियम तथा सेबी के प्रावधानों के अनुसार होनी चाहिए। साथ-ही-साथ यह सेबी की प्रकटन एवं निवेश संरक्षण मार्गदर्शियों से भी युक्त होना चाहिए।
2. विक्रय के लिए प्रस्ताव---- इस विधि के अन्तर्गत प्रतिभूतियों का निर्गमन सीधे ही जनता को नहीं किया जाता है, बल्कि निर्गमन गृहों या शेयर दलाल (ब्रोकर्स) जैसे बिचौलियों के द्वारा बिक्री के लिए प्रस्तावित किया जाता है। इसके अन्तर्गत कंपनियाँ प्रतिभूतियों को एक सहमति मल्य पर खंडवार दलालों (ब्रोकर्स) को बेचती हैं जोकि आगे इन्हें निवेशकों (जनता) को पन बेचते हैं।

3. निजी नियोजन या विनियोग----- इस विधि के अन्तर्गत एक कंपनी अपनी प्रतिभतियों का आबंटन (निर्गमन) कुछ संस्थागत निवेशकों या चयनित वैयक्तिक निवेशकों को करती है। यह विधि एक सार्वजनिक निर्गमन की तुलना में अधिक तेजी से निधि उगाहने में सहायता करती है। प्राथमिक

बाजार में जनता तक पहुंचने में अनेक आवश्यक और अनावश्यक खर्चों के कारण अधिक धन का व्यय होता है जिसके कारण कुछ कंपनियाँ सार्वजनिक निर्गमन न करके निजी विनियोग का प्रयोग करती है।

4. अधिकार निर्गम---यह एक विशेष अधिकार है जोकि कंपनी शर्तों एवं नियमों के अनसार विद्यमान शेयरधारकों को नए निर्गमों को पर्व क्रय करने का अवसर प्रदान करना है। इसके द्वारा शयरवारका पहले से ही कमाए (खरीदे) गए शेयरों के अनपात में नये शेयरों को खरीदने का अधिकार दिया जाता है।

5. इलेक्ट्रॉनिक आरंभिक सार्वजनिक निर्गम (ई०आई०पी०ओ०)---- जब कोई कंपनी अपनी सार्वजनिक पंजी निर्गम को शेयर बाजार की ऑनलाइन प्रणाली के माध्यम से प्रस्तावित करता है, ता उसे शेयर बाजार के साथ एक अनबंध करना पडता है। इसके अन्तर्गत कंपनी के द्वारा सेबा (SEBI) म पंजीकृत शेयर दलालों को आवेदन प्राप्त करने तथा आदेश नियोजन के लिए नियुक्त करना होता है। साथ-ही-साथ कंपनी को निर्गमन हेतु एक रजिस्ट्रार (पंजीयक) भी नियुक्त करना होता है जोकि स्टॉक एक्सचेंज के साथ इलेक्टॉनिक रूप से संबद्धता रखता हो। निर्गमन करने वाली कम्पना अपना प्रतिभूतियों की सूचीबद्धता का अंकेक्षण किसी भी स्टॉक एक्सचेंज में कर सकती है। यह स्टॉक एक्सचेंज उस स्टॉक एक्सचेंज से भिन्न हो सकता है जिसके माध्यम से कम्पनी ने अपनी प्रतिभूतिया को प्रस्तावित किया हो। प्रमुख प्रबंधक उन सभी बिचौलियों (मध्यस्थों) के साथ अपना समन्वय

बनाये रखता है जोकि इस निर्गम से जुड़े होते हैं।

प्रश्न 29. व्यापारिक तथा निपटान कार्यविधि का उल्लेख कीजिए।

उत्तर--- व्यापारिक तथा निपटान कार्यविधि

वर्तमान समय में प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय स्वमार्गीय स्क्रीन आधारित इलेक्ट्रॉनिक व्यापार के द्वारा किया जाता है। सरल शब्दों में,अंशों एवं ऋणपत्रों का क्रय-विक्रय एक कम्प्यूटर टर्मिनल के द्वारा किया जाता है। प्राचीन समय में प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय शेयर बाजार के मंच पर खुली बोली के द्वारा किया जाता था। इस खुली बोली प्रणाली के अन्तर्गत प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय दलालों के मध्य होता था। वे चिल्लाकर अंशों का मूल्य बताते थे तथा उच्चतम बोली लगाने वाले व्यक्ति को अंश बेच दिए जाते थे परन्तु, अब लगभग सभी शेयर बाजार इलेक्ट्रॉनिक हो गए हैं तथा प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय दलालों के कार्यालयों में कम्प्यूटर टर्मिनलों के द्वारा किया जाता है। एक शेयर बाजार का एक मुख्य कम्प्यूटर नेटवर्क होता है जिसके अनेक टर्मिनल देश भर के भिन्न-भिन्न स्थानों पर

स्थित होते हैं। दलाल शेयर बाजार के सदस्य होते हैं जोकि प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करते हैं। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि आज प्रतिभूतियों का व्यापार, शेयर बाजार के मंच से स्थानान्तरित होकर दलालों के कार्यालय में पहँच गया है।

प्रत्येक दलाल की पहुँच मुख्य शेयर बाजार से सम्बद्ध एक कम्प्यूटर टर्मिनल तक होती है। इस इलेक्ट्रॉनिक व्यापार प्रणाली में एक सदस्य वेबसाइट पर लॉग ऑन करके उन अंशों के विषय में जानकारी एवं मल्य भरता है जिनसे कि वह खरीदना अथवा बेचना चाहता है। इस व्यापार प्रणाली का सॉफ्टवेयर इस प्रकार से बनाया गया है कि जैसे ही प्रतिपक्ष (दूसरे व्यक्ति) से मिलान आदेश पाया जाता है, लेन-देन पर्ण हो जाता है। लेन-देन होने के दौरान दोनों ही पक्ष शेयरों के मूल्यों के उतार-चढ़ाव सहित सभी लेन-देन को कम्प्यटर स्क्रीन पर, शेयर बाजार के व्यावसायिक कार्यकाल के दौरान देख सकते हैं। दलालों के कार्यालय में कम्प्यूटर लगातार सर्वोच्च बोली तथा प्रस्तावित मूल्यों के आदेशों का मिलान करता रहता है। जिन आदेशों का मिलान नहीं हो पाता है, उन्हें स्क्रीन पर ही उस दिन के भावी मिलानों हेतु खुला रखा जाता है।

इलेक्ट्रॉनिक व्यापार प्रणाली अथवा कम्प्यूटर स्क्रीन-आधारित व्यापार की निम्नलिखित विशेषताएं/गुण है---

1. यह प्रणाली लेन-देन की पारदर्शिता को सुनिश्चित करती है क्योकि यह क्रेता एवं विक्रेता दोनों को

व्यावसायिक लेन-देन के दौरान समस्त प्रतिभूतियों के मूल्यों को देखने की सुविधा प्रदान करती है ये

दोनों व्यापारिक कार्यकाल के दौरान पूरे शेयर बाजार को अपनी कम्प्यूटर स्क्रीन पर देख सकते

2. शेयर बाजार की सूचनाओ की प्रभावशीलता में वृद्धि करता है जिसमे शेयरों के उचित मूल्य-निर्धारण में सहायता मिलती है। कम्प्यूटर स्क्रीन शेयरों के मूल्य को प्रभावित करने वाली सूचनाओं तथा पूँजी बाजार में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाती है।

3. यह प्रचालन की कार्यकुशलताओं में वृद्धि करता है क्योंकि इससे समय, लागत तथा त्रुटि के जोखिम में कमी आती है।

4. सम्पूर्ण देश के लोग तथा विदेशी भी जोकि शेयर बाजार में प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करना चाहते हैं, दलालों के माध्यम से, एक-दूसरे को जाने बिना, प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय, कर सकते हैं। इस प्रकार, वे दलाल के कार्यालय में बैठकर या कम्प्यूटर पर लॉग-ऑन करके प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय कर सकते हैं। यह प्रणाली एक विशाल संख्या में निवेशकों को एक-दूसरे के साथ व्यापार करने के योग्य बनाती है जिसके कारण शेयर बाजार में तरलता भी बढ़ती है।

5. इस प्रणाली में इससे जुड़े सभी व्यापारिक केन्द्रों में लेन-देन एक साथ मिल जाते हैं। यही कारण है कि

यह प्रणाली एकल व्यापारिक प्लेटफार्म उपलब्ध कराती है, जिसके कारण पूरे देश में फैले हुए सभी व्यापारिक केन्द्र, कम्प्यूटर स्क्रीन पर एक व्यापारिक प्लेटफार्म (शेयर बाजार) के अन्तर्गत लाए गए है।

वर्तमान में अंशों के क्रय-विक्रय करने की एकमात्र विधि स्क्रीन-आधारित व्यापार अथवा स्वमार्गीय व्यापार ही है क्योंकि अंशों को केवल भौतिक रूप में तथा इलेक्ट्रॉनिक बहीखाता प्रविष्टि के रूप में रखा जा सकता है और इसी रूप में ही इसको हस्तान्तरित भी किया जा सकता है। इस इलेक्ट्रॉनिक रूप को विभौतिकीय (डीमैटिरियलाइज्ड) रूप कहते हैं।

प्रश्न 30. सेबी के उद्देश्यों और कार्यों की व्याख्या करें। [NCERT]

उत्तर- सेबी के उद्देश्य-लघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न संख्या 7 से अध्ययन करें।

सेबी के कार्य----भारत में शेयर बाजार की उभरती हुई प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सेबी को-विनियमन तथा शेयर बाजार के विकास-दोनों ही कार्यों की जिम्मेदारी सौंपी गई है। चूंकि सेबी के कार्य इसके उद्देश्यों द्वारा निर्धारित होते हैं अतः हम कह सकते हैं कि इसके निम्नलिखित तीन प्रकार के कार्य हैं 1. सुरक्षात्मक कार्य, 2. नियमनकर्ता कार्य तथा 3. विकासपूर्ण कार्य।

आइए, अब इनका क्रमश: अध्ययन करते हैं---

1. सुरक्षात्मक कार्य---- सेबी के प्रमुख सुरक्षात्मक कार्य निम्नवत् हैं---

(i) सेबी शेयर बाजार में धोखा-धड़ी एवं अनुचित व्यापारिक कार्यों पर रोक लगाती है। अनुचित

व्यापारिक कार्यों के अन्तर्गत निम्न को सम्मिलित किया जाता है---

> प्रतिभूतियों (शेयरों) के बाजार मूल्य में वृद्धि या कमी करने के उद्देश्य से हेराफेरी करना। वर्तमान में इन क्रियाओं पर कानून ने रोक लगा दी है क्योंकि इसके द्वारा निवेशकों के साथ धोखा-धड़ी हो सकती है। .

> इस प्रकार के झूठे कथन कहना जिससे किसी भी व्यक्ति को शेयरों के क्रय-विक्रय के लिए उकसाया जा सके। (ii) सेबी ने शेयरों के भीतरी व्यापार अर्थात् आन्तरिक व्यक्ति द्वारा व्यापार करने पर रोक लगा रखी है।

आन्तरिक व्यक्ति वह व्यक्ति होता है जोकि कम्पनी से जुड़ा होता है तथा उसे कम्पनी के शेयरो को प्रभावित करने वाली वे सारी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं जोकि आम लोगों को प्राप्त नहीं होती है।

(ii) सेबी निवेशकों को शिक्षित करने के लिए ठोस कदम उठाती है।

(iv) सेबी शेयर बाजार में उचित कार्यों एवं आधार-संहिता को बढ़ावा देती है।

(v) सेबी ने ऋणपत्रधारियो के हितों की रक्षा करने हेत अनेक दिशानिर्देश दे रखे हैं। इनके अनुसार कम्पनी स्वयं से ऋणपत्रधारियों के कोषों को कहीं दूसरे स्थान पर निवेश नहीं कर सकती तथा लेन-देन की शर्तों को बीच में ही नहीं बदल सकती।

नियमनकर्ता कार्य--- सेबी के प्रमुख नियमनकर्ता कार्य निम्नवत् हैं---

(i) शेयर बाजार के दलालों, उपदलालों तथा अन्य मध्यस्थों का पंजीकरण करना।

(ii) सामूहिक निवेश योजनाओ एवं म्युचुअल फंडों का पंजीकरण करना।

(ii) शेयर दलालो, पोर्टफोलियो एक्सचेंजेस (फाइल विनिमय) तथा मर्चेट बैंकर्स का पंजीकरण करना।

(iv) धोखेबाजी एवं अन्य अनुचित व्यापारिक कार्यों की रोकथाम करना।

(v) आन्तरिक व्यक्ति द्वारा व्यापार (भीतरी व्यापार) करने एवं नियन्त्रणकारी बोलियों पर नियन्त्रण करना तथा ऐसे व्यवहारों के ऊपर दण्ड लगाना।

(vi) कम्पनियों (उद्यमो) में पर्यवेक्षण करना, जाँच-पड़ताल आयोजित करके जानकारी मांगना तथा शेयर बाजारों एवं मध्यस्थों की लेखा परीक्षा करना।

(vii) शेयर बाजार के लिए बनाए गए अधिनियमों से बाहर की जाने वाली गतिविधियों पर अधिशुल्क लगाना या कोई अन्य प्रभार लगाना।

(viii) एस०सी०आर० अधिनियम, 1956 के तहत दिए गए अधिकारों को सम्पादित एवं क्रियान्वित करना।

3. विकासपूर्ण कार्य---- सेबी के प्रमुख विकासपूर्ण कार्य निम्नवत् है---

(i) निवेशक शिक्षा प्रदान करना।

(i) मध्यस्थों को प्रशिक्षण प्रदान करना।

(iii) शेयर बाजार के लिए बनाए गए कानूनों एवं अधिनियमों के अनुसार कार्य करते हुए व्यापार को सतत् रूप से आगे बढ़ाना।

(iv) अनुसंधान कार्य आयोजित करना तथा बाजार के सभी भागीदारों के लिए उपयोगी सूचनाओं का प्रकाशन करना।

प्रश्न 31. ओ०टी०सी०ई०आई० (OTCEI) क्या है? OTCE पर ट्रेडिंग प्रक्रिया का वर्णन कीजिए तथा इसकी विशेषताओं को भी बताइए।

उत्तर- ओ०टी०सी०ई०आई० का अर्थ 'ओवर दी काउंटर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया' (Over the Counter Exchange of India) है। नवम्बर 1992 में मुंबई में स्थापित लघु व मध्यम ओद्योगिक इकाइयों के एक्सचेंज के रूप में मशहूर OTCEI भारत में सर्वप्रथम ऑनलाइन ट्रेडिंग सुविधा सम्पन्न कम्प्यूटराइज्ड एक्सचेंज है।

ओ०टी०सी०ई०आई० भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत निर्गमित एक ऐसी कम्पनी है जिसको स्थापना लघु व मध्यम कम्पनियों की पूँजी बाजार में पहुँच बनाने तथा लागत प्रभावी ढंग से पूंजी बाजार के लिए वित उगाहने हेतु सुविधा उपलब्ध कराने के लिए की गई है। इसका उद्देश्य है- निवेशको को पंजी बाजार के लिए एक सुविधाजनक, पारदर्शी एवं सक्षम पथ उपलब्ध कराना। यह पूर्णतः कम्प्यूटरीकत. पारदर्शी व सिंगल विण्डो एक्सचेंज है जिसने 1992 से व्यापार शुरू किया था। इसे एक ऐसे स्थान के रूप में परिभाषित किया जाता है जहाँ क्रेता विक्रेता की तलाश में तथा विक्रेता क्रेता की तलाश में होता है। इसके पश्चात दोनों ही के लिए क्रय-विक्रय के नियम व शर्तों की व्यवस्था होती है। इसकी स्थापना किसी भी स्थान पर कर सकते है।